मुंशी
प्रेमचंद साहित्य

दो बैलों की कथा

तथा अन्य कहानियाँ

प्रेमचंद की शिक्षाप्रद बाल कहानियां

प्रेमचंद की बाल कहानियां

दो बैलों की कथा

और अन्य कहानियाँ

eISBN: 978-81-2881-968-1

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II
नई दिल्ली- 110020
फोन : 011-40712100
ई-मेल : ebooks@dpb.in
वेबसाइट : www.diamondbook.in
संस्करण : 2015

Do Bailon Ki Katha & Other Stories

By - *Munshi Premchand*

कहानीकार प्रेमचंद

प्रेमचंद हिंदी-साहित्य के एक ऐसे कथाकार का नाम है, जिनसे साक्षर ही नहीं निरक्षर व्यक्ति भी परिचित है। प्रेमचंद झोपड़ी के राजा थे, इसीलिए उनके साहित्य की पहुँच झोपड़ी से लेकर राजमहल तक है। झोपड़ी और राजमहल के बीच का रास्ता भी उन्होंने उड़कर पार नहीं किया, अर्थात झोपड़ी से लेकर राजमहल तक जो कुछ भी प्रेमचंद के दृष्टि-पक्ष में आया, वह उनके साहित्य का विषय बन गया। कैसा होगा वह साहित्यकार, जो अपने जीवन-पक्ष में सब कुछ को स्वीकारता चला गया, अपनाता चला गया। किसी को भी उससे उपेक्षा नहीं मिली, चाहे वह राह का पत्थर था या मंदिर का देवता। प्रेमचंद की दृष्टि में सब समान थे। वे दीन-दुखियों के पक्षधर, कृषकों के मित्र, अन्याय के विरोधी, शोषण के शत्रु और साहित्य के देवता थे।

हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद के आगमन से एक नए युग का सूत्रपात हुआ। उन्होंने हिंदी-कहानी को नया आयाम दिया और उसे अनंत विस्तारमय क्षितिजों का संस्पर्श कराया।

प्रेमचंद के साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति है, जीवन के प्रति उनकी ईमानदारी। उनकी यह ईमानदारी कहानियों में बखूबी दिखती है। उन्होंने बच्चों को ध्यान में रखते हुए अनेक कहानियां लिखीं। ये कहानियां मनोरंजक होने के साथ ज्ञानवर्धक स्रोत भी हैं। उनके साहित्य में भारतीय जीवन का सच्चा और यथार्थ चित्रण हुआ है। प्रसिद्ध साहित्यकार प्रकाशचंद गुप्त ने लिखा है, 'यह भारत नगरों और गाँवों में, खेतों और खलिहानों में, सँकरी गलियों और राजपथों पर सड़कों और गलियारों में, छोटे-छोटे खेतों और टूटी-फूटी झोपड़ियों में निवास करता है। इस जीवन को प्रेमचंद अपनी लेखनी की शक्ति से बदलना चाहते थे और इसमें बड़ी मात्रा में वे सफल भी हुए।'

प्रेमचंद क्रांतिकारी चिंतक थे। अन्याय और कुरीतियों पर प्रेमचंद ने चौमुखी आक्रमण किया। प्रेमचंद एक ऐसा हीरा है, जिसमें अनेक कटाव हैं और हर कटाव में साहित्य के बहुविध रूप अनायास ही प्रतिबिंबित हैं।

प्रेमचंद हमारे युग के साहित्य-सूर्य थे। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का लेखा-जोखा हम यथातथ्य नहीं कर पाएंगे, क्योंकि इतिहास की दृष्टि से वे अब भी हमारे सन्निकट ही हैं। उनकी महानता कुछ ऐसी है कि वह समय के प्रवाह के साथ उत्तरोत्तर अग्रसर होने पर और अधिक जगमगाएँगे। फिर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करने में एक अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति होती है। आज का साहित्य ही नहीं, राष्ट्र का गौरव भी प्रेमचंद की ही विरासत है।

इस संकलन में हमने बालमन को छूने वाली उन कहानियों को चुना है, जो प्रेमचंद को एक बाल साहित्यकार के रूप में परिचित कराती हैं। ये कहानियां बच्चों के अलावा आम पाठकों के लिए भी रुचिकर होंगी क्योंकि इनमें शिक्षा के साथ मनोरंजन भी है।

– प्रकाशक

विषय सूची

1. दो बैलों की कथा
2. गुप्त धन
3. कज़ाकी
4. पिसनहारी का कुंआ
5. कप्तान साहब
6. सुजान भगत
7. बालक

दो बैलों की कथा

जानवरों में गधा सबसे मूर्ख समझा जाता है। हम जब किसी आदमी को पहले दरजे का बेवकूफ़ कहना चाहते हैं तो उसे गधा कहते हैं। गधा सचमुच बेवकूफ़ है, या उसके सीधेपन, उसकी हानिरहित सहनशीलता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गायें सींग मारती हैं, ब्याही हुई गाय तो एकाएक सिंहनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है, लेकिन गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहे उस गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असंतोष का चिन्ह भी न दिखाई देगा। बैशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो; पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर दु:ख स्थायी रूप से छाया रहता है। सुख-दु:ख, हानि-लाभ किसी दशा में भी बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वह सभी उसमें हैं, पर आदमी उसे मूर्ख कहता है। सद्गुणों का इतना अनाचार कहीं नहीं देखा। शायद सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं, जी-तोड़ काम करते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर ग़म गम खा जाते हैं। फिर भी बदमाश हैं। अगर वे ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद सभ्य कहलाने लगते।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी है, जो उससे कुछ ही कम गधा है और वह है 'बैल'। जिस अर्थ में हम 'गधा' का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते अर्थ में 'बछिया के ताऊ' का प्रयोग भी करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद मुर्खों में सबसे बड़ा कहेंगे, मगर हमारा विचार ऐसा नहीं। बैल कभी-कभी मारता भी है। कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आता है। और भी कई प्रकार से वह अपना असंतोष प्रकट कर देता है; इसलिए उसका स्थान गधे से नीचा है।

झूरी काछी के दोनों बैलों के नाम हैं हीरा और मोती। दोनों पछाई जाति के थे। देखने में सुंदर, काम में तत्पर, डील में ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाई-चारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक-दूसरे से मौन भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करने वाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक-दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते। कभी-कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे, झगड़े के भाव से नहीं, केवल हास-परिहास के भाव से, अपनेपन के भाव से; जैसे दोस्तों में निकटता होते ही हाथापाई होने लगती है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हल्की-सी रहती है, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस समय ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिए जाते थे और गरदनें हिला-हिलाकर चलते, तो हर एक ही यही चेष्टा होती थी कि ज्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे। दिन-भर के बाद दोपहर या संध्या को दोनों खुलते, तो एक-दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकान मिटा लिया करते। नाँद में खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ

उठते, साथ नाँद में मुँह डालते और साथ ही बैठते थे। एक मुँह हटा लेता तो दूसरा भी हटा लेता था।

संयोग की बात, झूरी ने एक बार गोई को ससुराल भेज दिया। बैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जा रहे हैं। समझे मालिक ने हमें बेच दिया।

अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने; पर झूरी के साले गया को घर तक गोई ले जाने में दाँतों पसीना आ गया। पीछे से हाँकता तो दोनों दाएँ-बाएँ भागते, पगहिया पकड़कर नीचे करके हुंकारते। अगर ईश्वर ने उन्हें वाणी दी होती, तो झूरी से पूछते, तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता था तो और काम लेते। हमें तो तुम्हारी सेवा में मर जाना स्वीकार था। हमने दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया, फिर तुमने हमें इस अत्याचारी के हाथ क्यों बेच दिया?

संध्या समय दोनों बैल अपने नए स्थान पर पहुँचे। दिन-भर के भूखे थे, लेकिन जब नाँद में लगाए गए, तो एक ने भी उसमें मुँह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होंने अपना घर समझ रखा था वह आज उनसे छूट गया था। यह नया घर, नया गाँव, नए आदमी सब उन्हें पराए-से लगे।

दोनों ने अपनी मूक भाषा में सलाह की, एक-दूसरे को चोरी-चोरी देखा और लेट गए। जब गाँव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने ज़ोर मारकर रस्सियाँ तुड़ा डालीं और घर की तरफ चले। रस्सियाँ बहुत मजबूत थीं। अनुमान नहीं हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा। पर इन दोनों में इस समय दूसरी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गई।

झूरी प्रात:काल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनों में आधा-आधा गराँव (गले की रस्सी) लटक रहा है। घुटने तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोह से भरा हुआ प्यार झलक रहा है।

झूरी बैलों को देखकर स्नेह से गदगद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुंबन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गए और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अनोखी न होने पर भी महत्त्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशुवीरों को अभिनंदन-पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।

एक बालक ने कहा- 'ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।'

दूसरे ने समर्थन किया- 'इतनी दूर से अकेले चले आए।'

तीसरे ने कहा- 'बैल नहीं हैं वे, उस जन्म के आदमी हैं।'

इसका विरोध करने का किसी को साहस नहीं हुआ।

झूरी की पत्नी ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली- 'कैसे नमकहराम बैल हैं कि एक दिन भी वहाँ काम न किया। भाग खड़े हुए।'

झूरी अपने बैलों पर लगाया गया आरोप न सुन सका- 'नमकहराम क्यों हैं? चारा-दाना दिया न होगा तो क्या करते?'

स्त्री ने रौब के साथ कहा- 'बस, तुम्हीं तो बैलों को खिलाना जानते हो, और सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।'

झूरी ने चिढ़ाया- 'चारा मिलता तो क्यों भागते?'

स्त्री चिढ़ी- 'भागे इसलिए कि वे लोग तुम जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों को सहलाते नहीं। खिलाते हैं तो रगड़कर जोतते भी हैं। ये दोनों ठहरे कामचोर, भाग निकले। अब देखूँ कहाँ से खली और चोकर मिलता है? सूखे भूसे के सिवा कुछ न दूँगी, खाएँ चाहे मरें।'

वही हुआ। मजदूर को कड़ा निर्देश दिया कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाए।

बैलों ने नाँद में मुँह डाला तो फीका-फीका। न कोई चिकनाहट, न कोई रस। क्या खाएँ। आशा-भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे। झूरी ने मजदूर से कहा- 'थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता रे?'

'मालकिन मुझे मार ही डालेंगी।'

'चुराकर डाल आ।'

'ना दादा, पीछे से तुम भी उन्हीं की-सी कहोगे।'

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अब की उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना चाहा, पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या समय पर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों से बाँधा और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी, सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। झूरी उन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ पर मार पड़ी। आहत सम्मान की पीड़ा तो थी ही, उस पर मिला सूखा भूसा। नाँद की तरफ आँख तक न उठायी।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता; पर इन दोनों ने जैसे पाँव न उठाने की कसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक गया; पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब निर्दयी ने हीरा के नाक में खूब डंडे जमाए तो मोती का गुस्सा काबू से बाहर हो गया। हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, सब टूट-टाटकर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं तो दोनों पकड़ाई में न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा- 'भागना व्यर्थ है।'

मोती ने उसी भाषा में उत्तर दिया- 'तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी। अबकी बार मार पड़ेगी।'

'पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे?'

'गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है, दोनों के हाथ में लाठियां हैं।'

मोती बोला- 'कहो तो दिखा दूँ कुछ मजा मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है!'

हीरा ने समझाया- 'नहीं भाई, खड़े हो जाओ।'

'मुझे मारेगा, तो मैं एक-दो को गिरा दूँगा।'

'नहीं, हमारी जाति का यह धर्म नहीं।'

मोती दिल में ऐंठकर रह गया। गया आ पहुँचा और दोनों को पकड़कर ले चला। कुशल हुई कि इस वक्त मार-पीट न की, नहीं मोती भी पलट पड़ता। उसके रंग-ढंग देखकर सहम गया और उसके सहायक समझ गए कि इस वक्त टाला जाना ही उचित है।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया। दोनों चुपचाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन करने लगे। उसी वक्त एक छोटी-सी लड़की दो रोटियाँ लेकर निकली, और दोनों के मुँह में देकर चली गई। उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या शांत होती; पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया। यहाँ भी किसी सज्जन का निवास है। लड़की भैरों की थी। उसकी माँ मर चुकी थी। सौतेली माँ उसे मारती थी, इसलिए इन बैलों से उसे एक प्रकार का अपनापन हो गया था।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डंडे खाते। शाम को थान पर बांध दिए जाते और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती। प्रेम के इस प्रसाद की यह महिमा थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते थे, मगर दोनों की आँखों में, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक भाषा में कहा- 'अब तो सहा नहीं जाता हीरा।'

'क्या करना चाहते हो?'

'एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दूँगा।'

'लेकिन जानते हो वह प्यारी लड़की, जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। यह बेचारी अनाथ हो जाएगी।'

'तो मालकिन को न फेंक दूं। वही तो उस लड़की को मारती है।'

'लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, वह भूले जाते हो।'

'तुम तो किसी तरह निकलने ही नहीं देते। तो आओ, आज तुड़ाकर भाग चलें।'

'हाँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ; लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे?'

'इसका उपाय है। पहले रस्सी को थोड़ा-सा चबा लो। फिर एक झटके में टूट जाती है।'

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गई, तो दोनों रस्सियाँ चबाने लगे; मोटी रस्सी मुँह में न जाती थी। बेचारे बार-बार ज़ोर लगाकर रह जाते।

सहसा घर का द्वार खुला और वही लड़की निकली। दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चाटने लगे। दोनों की पूछें खड़ी हो गई। उसने उनके माथे सहलाए और बोली- 'खोले देती हूँ चुपके से भाग जाओ, नहीं यहां के लोग मार डालेंगे। आज घर में सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जाए।

उसने गरांव खोल दिया, पर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

मोती ने अपनी भाषा में पूछा- 'अब चलते क्यों नहीं?'

हीरा ने कहा- 'चलें तो; लेकिन कल इस अनाथ पर आफत आएगी। सब इसी पर संदेह करेंगे। सहसा बालिका चिल्लाई, 'दोनों फूफा वाले बैल भागे जा रहे हैं। ओ दादा! दोनों बैल भागे जा रहे हैं। जल्दी दौड़ो।'

गया हड़बड़ाकर भीतर से निकला और बैलों को पकड़ने चला। वह दोनों भागे। गया ने पीछा किया। वह और भी तेज हुए। गया ने शोर मचाया। फिर गाँव के कुछ आदमियों को साथ लेने के लिए लौटा। दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गए। यहाँ तक कि मार्ग का ज्ञान न रहा। जिस परिचित मार्ग से आए थे, उसका यहाँ पता न था। नए-नए गाँव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे, अब क्या करना चाहिए।

हीरा ने कहा- 'मालूम होता है, राह भूल गए।'

'तुम भी तो तेजी से भागे। वहीं उसे मार गिराना था।'

'उसे मार गिराते, तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दें, लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें!'

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत में मटर खड़ी थी। चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं।

जब पेट भर गया, दोनों ने आजादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाए और एक-दूसरे को ठेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाई में गिर गया। तब उसे भी क्रोध आया। सँभलकर उठा और फिर मोती से भिड़ गया। मोती ने देखा, खेल में झगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गए।

अरे! यह क्या! कोई साँड़ डौंकता हुआ चला आ रहा है। हाँ, साँड़ ही है। वह सामने आ पहुँचा। दोनों मित्र बगलें झाँक रहे हैं। साँड़ पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है; लेकिन न भिड़ने पर तो जान बचती नहीं नजर आती। इन्हीं की तरफ आ रहा है। कितनी भयंकर सूरत है!

मोती ने मूक भाषा में कहा- 'बुरे फँसे! जान कैसे बचेगी? कोई उपाय सोचो।'

हीरा ने चिंतित स्वर में कहा- 'अपने घमंड में भूला हुआ है। आरजू-विनती न सुनेगा।'

'भाग क्यों न चलें?'

'भागना कायरता है।'

'तो फिर यहीं मरो। बंदा तो नौ-दो ग्यारह होता है।'

'और जो दौड़ाए?'

'तो फिर कोई उपाय सोचो जल्द!'

'उपाय यही है कि उस पर दोनों प्राणी एक साथ चोट करें। मैं आगे से दौड़ाता हूँ तुम पीछे से दौड़ाओ, दोहरी मार पड़ेगी, तो भाग खड़ा होगा। ज्यों ही मेरी ओर झपटे तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसा देना। जान को खतरा है, पर दूसरा उपाय नहीं है।'

दोनों मित्र जान हथेलियों पर लेकर लपके। साँड़ को कभी संगठित शत्रुओं से लड़ने का अनुभव न था। वह तो शत्रु से मल्लयुद्ध करने का आदी था। ज्यों ही हीरा पर झपटा, मोती ने पीछे से दौड़ाया। साँड़ उसकी तरफ मुड़ा तो हीरा ने दौड़ाया। साँड़ चाहता था कि एक-एक करके दोनों को गिरा ले, पर ये दोनों चतुर थे। उसे यह अवसर न देते थे। एक बार साँड़ क्रोध में भरकर हीरा का अंत कर देने के लिए चला कि मोती ने बगल से आकर उसके पेट में सींग भोंक दिया। साँड़ क्रोध में आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरी ओर सींग चुभो दिया। आखिर बेचारा घायल होकर भागा, और दोनों ने दूर तक पीछा किया। यहाँ तक कि साँड बेदम होकर गिर पड़ा। तब दोनों ने उसे छोड़ दिया।

दोनों मित्र विजय के नशे में झूमते चले जा रहे थे।

मोती ने अपनी संकेतों की भाषा में कहा, 'मेरा जी चाहता था कि बच्चा को मार ही डालूँ।'

हीरा ने विरोध किया, 'गिरे हुए शत्रु पर सींग नहीं चलाना चाहिए।'

'यह सब ढोंग है। बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे।'

'अब कैसे पहुँचेंगे, यह सोचो।'

'पहले कुछ खा लें, तब सोचें।'

सामने मटर का खेत था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा मना करता रहा, पर उसने एक न सुनी। अभी दो-चार ही ग्रास खाए थे कि दो आदमी लाठियाँ लिए दौड़ पड़े और दोनों मित्रों को घेर लिया। हीरा मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खेत में था। उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे। भाग न सका। पकड़ लिया गया। हीरा ने देखा, संगी संकट में है, लौट पड़ा। फँसेंगे तो दोनों फँसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रात:काल दोनों मित्र कांजी हाउस में बंद कर दिए गए।

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा मौका आया कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समझ में ही न आता था। यह कैसा स्वामी है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। वहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े; कई गधे, पर किसी के सामने चारा न था, सब जमीन पर मुर्दों की तरह पड़े थे। कई तो इतने कमजोर हो गए थे कि खड़े भी न हो सकते थे। सारा दिन दोनों मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाए ताकते रहे, पर कोई चारा लेकर आता न दिखाई दिया। तब दोनों ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरू की, पर इससे क्या संतोष होगा?

रात को भी कुछ भोजन न मिला, तो हीरा के दिल में विरोध की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला, 'अब तो नहीं रह जाता, मोती!'

मोती ने सिर लटकाए हुए जवाब दिया, 'मुझे तो मालूम होता है प्राण निकल रहे हैं।'

'इतनी जल्द हिम्मत न हारो भाई! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।'

'आओ दीवार तोड़ डालें।'

'मुझसे तो अब कुछ न होगा।'

'बस इसी बूते पर अकड़ते थे।'

'सारी अकड़ निकल गई।'

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा मजबूत तो था ही, अपने नोंकदार सींग दीवार में गड़ा दिए और जोर मारा, तो मिट्टी का एक चप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढ़ा। उसने दौड़-दौड़कर दीवार पर चोंटें कीं और हर चोट में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय कांजीहाउस का चौकीदार लालटेन लेकर, जानवरों की हाजिरी लेने आ निकला। हीरा का यह उजड्डपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किए और मोटी-सी रस्सी से बाँध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा, 'आखिर मार खाई, क्या मिला?'

'अपने बूते पर जोर तो मार लिया।'

'ऐसा जोर मारना किस काम का कि और बंधन में पड़ गए।'

'जोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने बंधन पड़ते जाएँ।'

'जान से हाथ धोना पड़ेगा।'

'कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, दीवार खुद जाती, तो कितनी जानें बच जातीं। इतने भाई यहाँ बंद हैं। किसी की देह में जान नहीं है। दो-चार दिन और यही हाल रहा तो सब मर जाएँगे।'

'हाँ, यह तो बात है। अच्छा तो लो, फिर मैं भी जोर लगाता हूँ।'

मोती ने भी दीवार में उसी जगह सींग मारा। थोड़ी-सी मिट्टी गिरी और हिम्मत बढ़ी। फिर तो

वही दीवार में सींग लगाकर इस तरह जोर करने लगा मानो किसी विरोधी से लड़ रहा है। आखिर दो घंटे की कोशिश के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गई। उसने दूनी शक्ति से धक्का मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था कि अधमरे-से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीनों घोड़ियाँ सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियाँ निकलीं। इसके बाद भैंसें भी खिसक गईं; पर गधे अभी तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा, 'तुम क्यों नहीं भाग जाते?'

एक गधे ने कहा, 'जो कहीं फिर पकड़ लिए जाएँ?'

'तो क्या हर्ज है? अभी तो भागने का अवसर है।'

'हमें तो डर लगता है। हम यहीं पड़े रहेंगे।'

आधी रात से ऊपर जा चुकी थी। दोनों गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे, भागें या न भागें। और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने में लगा हुआ था, जब वह हार गया तो हीरा ने कहा, 'तुम जाओ, मुझे यहीं पड़ा रहने दो। शायद कहीं भेंट हो जाए।'

मोती ने आँखों में आँसू लाकर कहा, 'तुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हो हीरा! हम और तुम इतने दिनों एक साथ रहे। आज तुम मुसीबत में पड़ गए, तो मैं तुम्हें छोड़कर अलग हो जाऊँ?'

हीरा ने कहा, 'बहुत मार पड़ेगी। लोग समझ जाएँगे, यह तुम्हारी शरारत है।'

मोती गर्व से बोला, 'जिस अपराध के लिए तुम्हें गले में बंधन पड़ा, उसके लिए अगर मुझ पर मार पड़े, तो क्या चिंता। इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियों की जान बच गई। ये सब तो आशीर्वाद देंगे।'

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधों को सींगों से मार-मारकर बाड़े से बाहर निकाला और तब अपने बंधु के पास आकर सो रहा।

सुबह होते ही मुंशी और चौकीदार और अन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची, इसके लिखने की जरूरत नहीं। बस, इतना ही काफी है कि मोती की खूब मरम्मत हुई है उसे भी मोटी रस्सी से बाँध दिया गया।

एक सप्ताह तक दोनों मित्र वहाँ बँधे पड़े रहे। किसी ने चारे का एक तिनका भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गए कि उठा तक न जाता था। ठठरियाँ निकल आई थीं।

एक दिन बाड़े के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते-होते वहाँ पचास-साठ आदमी जमा हो गए। तब दोनों मित्र निकाले गए और उनकी देखभाल होने लगी। लोग आ-आकर उनकी सूरतें देखते और मन फीका करके चले जाते। ऐसे मृतक बैलों का कौन खरीदार होता?

सहसा एक दाढ़ी वाला आदमी, जिसकी आँखें लाल थीं और मुद्रा अत्यंत कठोर, आया और

दोनों मित्रों के कूल्हों में उंगली गोदकर मुंशी जी से बातें करने लगा। उसका चेहरा देखकर दोनों मित्रों के दिल काँप उठे। वह कौन है, उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई संदेह न हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को भयभीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा, 'गया के घर से बेकार भागे। अब जान न बचेगी।'

मोती ने उत्तर दिया, 'कहते हैं, भगवान सबके ऊपर दया करते हैं। इन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती?'

'भगवान के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर है। चलो, अच्छा ही है, कुछ दिन उसके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचाएंगे?'

'यह आदमी छुरी चलाएगा। देख लेना।'

'तो क्या चिंता है। मांस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी-न-किसी काम आ जाएँगी।'

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दढ़ियल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे; पर भय के मारे गिरते-गिरते भागे जाते थे, क्योंकि वह जरा भी चाल धीमी हो जाने पर जोर का डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का झुंड हरे-भरे हार में चरता नजर आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिकने, चंचल। कोई उछलता था, कोई आनंद से बैठा जुगाली करता था। कितना सुखी जीवन था इनका, पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिंता नहीं कि उनके दो भाई बधिक के हाथ पड़े कैसे दु:खी हैं।

अचानक दोनों को ऐसा मालूम हुआ, यह परिचित मार्ग है। हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग, वही गाँव मिलने लगे। पल-पल उनकी चाल तेज होने लगी। सारी थकान, सारी दुर्बलता गायब हो गई। अहा, यह लो! अपना ही हार आ गया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे। हाँ, यही कुआँ है।

मोती ने कहा, 'हमारा घर निकट आ गया।'

हीरा बोला, 'भगवान की दया है।'

'मैं तो अब घर भागता हूँ।'

'यह जाने देगा?'

'इसे मार गिराता हूँ।'

'नहीं-नहीं, दौड़कर थान पर ले चलो। वहाँ से हम आगे न जाएँगे।'

दोनों बछड़ों की भाँति प्रसन्नता प्रकट करते हुए घर की ओर दौड़े। वह हमारा थान है। दोनों दौड़कर अपने थान पर आए और खड़े हो गए। दढ़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था।

झूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था। बैलों को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने

लगा। मित्रों की आँखों से आनंद के आँसू बहने लगे। एक झूरी का हाथ चाट रहा था।

दढ़ियल ने जाकर बैलों की रस्सियाँ पकड़ लीं।

झूरी ने कहा, 'मेरे बैल हैं।'

'तुम्हारे बैल कैसे? मैं मवेशीखाने से नीलाम लिए आता हूँ।'

'मैं तो समझता हूँ, चुराए लिए आते हो। चुपके से चले जाओ। मेरे बैल हैं। मैं बेचूँगा, तो बिकेंगे। किसी को मेरे बैल नीलाम करने का क्या अधिकार है?'

'जाकर थाने में रपट कर दूँगा।'

'मेरे बैल हैं। इसका सबूत यह है कि मेरे द्वार पर खड़े हैं।'

दढ़ियल क्रोध करता हुआ बैलों को जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी समय मोती ने सींग चलाया। दढ़ियल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दढ़ियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका, पर खड़ा दढ़ियल रास्ता देख रहा था। दढ़ियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था और मोती विजयी बहादुर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गाँव के लोग तमाशा देखते थे और हँसते थे।

जब दढ़ियल हारकर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

हीरा ने कहा, 'मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर मार न बैठो।'

'अगर वह मुझे पकड़ता, तो मैं बिना मारे न छोड़ता।'

'अब न आएगा।'

'आएगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ कैसे ले जाता है।'

'जो गोली मरवा दे?'

'मर जाऊँगा, उसके काम न आऊँगा।'

'हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।'

'इसलिए कि हम इतने सीधे होते हैं।'

जरा देर में नाँद में खली, भूसा, चोकर, दाना भर दिया गया और दोनों मित्र खाने लगे। झूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था और बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे। सारे गाँव में उत्साह-सा मालूम होता था।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिए।

गुप्त धन

बाबू हरिदास का ईंटों का पजावा शहर से मिला हुआ था। आसपास के देहातों से सैकड़ों स्त्री-पुरुष, लड़के नित्य आते और पजावे से ईंट सिर पर उठाकर ऊपर कतारों से सजाते। एक आदमी पजावे के पास एक टोकरी में कौड़िया लिए बैठा रहता था। मजदूरों की ईंटो की संख्या के हिसाब से कौड़िया बांटता। ईंट जितनी ही ज्यादा होती उतनी ही ज्यादा कौड़ियां मिलती। इस लोभ में बहुत से मजदूर बूते के बाहर काम करते। वृद्धों और बालकों को ईंटों के बोझ से अकड़े हुए देखना बहुत करुणाजनक दृश्य था। कभी-कभी बाबू हरिदास स्वयं आकर कौड़ी वाले के पास बैठ जाते और ईंटें लादने को प्रोत्साहित करते। यह दृश्य तब और भी दारुण हो जाता था जब ईंटो की कोई असाधारण आवश्यकता आ पड़ती। उसमें मजदूरी दूनी कर दी जाती थी और मजदूर लोग अपनी सामर्थ्य से दूनी ईंटें लेकर चलते। एक-एक पग उठना कठिन हो जाता। उन्हें सिर पर रखे, बोझ से दबे देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो लोभ का भूत उन्हें जमीन पर पटक कर उनके सिर पर सवार हो गया है। सबसे करुण दशा एक छोटे लड़के की थी जो सदैव अपनी अवस्था के लड़कों से दुगुनी ईंटें उठाता और सारे दिन अविश्रांत परिश्रम और धैर्य के साथ अपने काम में लगा रहता। उसके मुख पर ऐसी दीनता छायी रहती थी, उसका शरीर इतना कश और दुर्बल था कि उसे देखकर दया आ जाती थी। और लड़के बनिये की दुकान से गुड़ लाकर खाते, कोई सड़क पर जाने वाले इक्कों और हवागाड़ियों की बहार देखता और कोई व्यक्ति संग्राम में अपनी जिह्वा और बाहु के जौहर दिखाता; लेकिन इस गरीब लड़के को अपने काम से काम था। उसमें लड़कपन की न चंचलता थी, न शरारत, न खिलाड़ीपन, यहां तक कि उसके ओंठों पर कभी हंसी भी न आती थी। बाबू हरिदास को उसकी दशा पर दया आती। कभी-कभी कौड़ीवाले को इशारा करते कि उसे हिसाब से अधिक कौड़ियां दे दो कभी-कभी वे उसे कुछ खाने को दे देते।

एक दिन उन्होंने उस लड़के को बुलाकर अपने पास बैठाया और उसका समाचार पूछने लगे। ज्ञात हुआ कि उसका घर पास ही के गांव में हैं। घर में एक वृद्धा माता के सिवा कोई नहीं और वह वृद्धा भी किसी पुराने रोग से ग्रस्त रहती हैं। घर का सारा भार इसी लड़के के सिर था। कोई उसे रोटियां बनाकर देने वाला भी न था। शाम को जाता तो अपने हाथों से रोटियां बनाता और अपनी मां को खिलाता था। जाति का ठाकुर था। किसी समय उसका कुल धन-धान्य सम्पन्न था। लेन-देन होता था और शक्कर का कारखाना चलता था। कुछ जमीन भी थी किन्तु रोटियों के लाले थे। लड़के का नाम मगनसिंह था।

हरिदास ने पूछा- 'गांववाले तुम्हारी कुछ मदद नहीं करते?'

मगन- 'वाह, उनका बश चले तो मुझे मार डालें। सब समझते हैं कि मेरे घर में रुपये गड़े हैं।'

हरिदास ने उत्सुकता से पूछा - 'पुराना घराना है, कुछ-न-कुछ तो होगा ही। तुम्हारी मां ने इस

विषय में तुमसे कुछ नहीं कहा?'

मगन- बाबूजी नहीं एक पैसा भी नहीं। रुपये होते तो अम्मां इतनी तकलीफ क्यों उठाती?'

2

बाबू हरिदास मगनसिंह से इतने प्रसन्न हुए कि मजदूरों की श्रेणी से उठाकर अपने नौकरों में रख लिया। उसे कौड़ियां बांटने का काम दिया और पजावे में मुंशीजी को ताक़ीद कर दी कि इसे कुछ पढ़ना-लिखना सिखाइए। अनाथ के भाग्य जाग उठे।

मगनसिंह बड़ा कर्तव्यशील और चतुर लड़का था। उसे कभी देर न होती, कभी नागा न होता। थोड़े ही दिनों में उसने बाबू साहब का विश्वास प्राप्त कर लिया। लिखने-पढ़ने में भी कुशल हो गया।

बरसात के दिन थे। पजावे में पानी भरा हुआ था। कारोबार बन्द था। मगनसिंह तीन दिनों से गैर हाज़िर था। हरिदास को चिंता हुई, क्या बात है, कहीं बीमार तो नहीं हो गया, कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी? कई आदमियों से पूछताछ की, पर कुछ पता न चला। चौथे दिन पूछते-पूछते मगन सिंह के घर पहुंचे। घर क्या था पुरानी समृद्धि का ध्वंसाशेष मात्र था। उनकी आवाज सुनते ही मगनसिंह बाहर निकल आया। हरिदास से पूछा- 'कई दिन से आये क्यों नहीं, माता का क्या हाल है?'

मगनसिंह ने अवरुद्ध कंठ से उत्तर दिया- 'अम्मा आजकल बहुत बीमार है, कहती है अब न बचूंगी। कई बार आपको बुलाने के लिए मुझसे कह चुकी है, पर मैं संकोच के मारे आपके पास न आता था। अब आप सौभाग्य से आ गये हैं तो जरा चलकर उसे देख लीजिए। उसकी लालसा भी पूरा हो जाये।'

हरिदास भीतर गये। सारा घर भौतिक निस्सारता का परिचायक था। सुर्खी, कंकड़, ईंटों के ढेर चारों ओर पड़े हुए थे। विनाश का प्रत्यक्ष स्वरूप था। केवल दो कोठरियां गुजर करने के लायक थी। मगनसिंह ने एक कोठरी की ओर उन्हें इशारे से बताया। हरिदास भीतर गये, तो देखा कि वृद्धा सड़े हुए काठ के टुकड़े पर पड़ी कराह रही है।

उनकी आहट पाते ही आंखें खोली और अनुमान से पहचान गयी, बोली- 'आप आ गये, बड़ी दया की। आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा थी। मेरे अनाथ बालक के नाथ अब आप ही हैं। जैसे आपने अब तक उसकी रक्षा की है, वह निगाह उस पर सदैव बनाये रखिएगा। मेरी विपत्ति के दिन पूरे हो गये। इस मिट्टी को पार लगा दीजिएगा। एक दिन घर में लक्ष्मी का वास था। अदिन आये तो उन्होंने भी आंखें फेर ली। पुरखों ने इसी दिन के लिए कुछ थाती धरती माता को सौंप दी थी। उसका बीजक बड़े यत्न से रखा था; पर बहुत दिनों से उसका कहीं पता न लगता था। मगन के पिता ने बहुत खोजा पर न पा सके, नहीं तो हमारी दशा इतनी हीन न होती। आज तीन दिन हुए मुझे वह बीजक आप-ही-आप रद्दी कागजों में मिल गया। तब से उसे छिपाकर रखे हुए हैं। उसमें सब बातें लिखी हैं। उसी से ठिकाने का भी पता चलेगा। अवसर मिले तो उसे खुदवा डालिएगा। मगन को दे दीजिएगा। यही कहने के लिए आपको बार-बार बुलवाती थी। आपके सिवा मुझे किसी पर विश्वास न था। संसार से धर्म उठ गया। किसकी नियत पर भरोसा किया

जाये।'

3

हरिदास ने बीजक का समाचार किसी से न कहा। नीयत बिगड़ गयी। दूध में मक्खी पड़ गयी। बीजक से ज्ञात हुआ कि धन उस घर से 500 डग पश्चिम की ओर एक मंदिर के चबूतरे के नीचे है।

हरिदास धन को भोगना चाहते थे, पर इस तरह कि किसी को कानों-कान ख़बर न हो। काम कष्ट-साध्य था। नाम पर धब्बा लगने की प्रबल आशंका थी जो संसार में सबसे बड़ी यंत्रणा है। कितनी घोर नीचता थी। जिस अनाथ की रक्षा की, जिसे बच्चे की भांति पाला, उनके साथ विश्वासघात! कई दिनों तक आत्म-वेदना की पीड़ा सहते रहे। अंत में कुतर्कों ने विवेक को परास्त कर दिया। मैंने कभी धर्म का परित्याग नहीं किया और न कभी करूंगा। क्या कोई ऐसा प्राणी भी है जो जीवन में एक बार भी विचलित न हुआ हो। यदि है तो वह मनुष्य नहीं, देवता है। मैं मनुष्य हूं। मुझे देवताओं की पंक्ति में बैठने का दावा नहीं है।

मन को समझाना बच्चे को फुसलाना है। हरिदास सांझ को सैर करने के लिए घर से निकल जाते। जब चारों ओर सन्नाटा छा जाता तो मंदिर के चबूतरे पर आ बैठते और एक कुदाली से उसे खोदते। दिन में दो एक बार इधर-उधर ताक-झांक करते कि कोई चबूतरे के पास खड़ा तो नहीं है। रात की निस्तब्धता में उन्हें अकेले बैठे ईंटों को हटाते हुए उतना ही भय होता था जितना किसी भ्रष्ट वैष्णव को आमिष भोजन से होता।

चबूतरा लम्बा चौड़ा था। उसे खोदते एक महीना लग गया और अभी आधी मंजिल भी तय न हुई। इन दिनों उनकी दशा उस पुरुष की सी थी जो कोई मंत्र जगा रहा हो। चित्त पर चंचलता छायी रहती। आंखों की ज्योति तीव्र हो गयी थी। बहुत गुम-सुम रहते, मानों ध्यान में हों। किसी से बात-चीत न करते, अगर कोई छेड़ कर बात करता तो झुंझला पड़ते। पजावे की ओर बहुत कम जाते। विचारशील पुरुष थे। आत्मा बार-बार इस कुटिल व्यापार से भागती, निश्चय करते कि अब चबूतरे की ओर न जाऊंगा, पर संध्या होते ही उन पर एक नशा-सा छा जाता, बुद्धि-विवेक का अपहरण हो जाता। जैसे कुत्ता मार खाकर थोड़ी देर के बाद फिर टुकड़े की लालच में आ बैठता है, वह दशा उनकी थी। यहां तक कि दूसरा मास भी व्यतीत हुआ।

अमावस की रात थी। हरिदास मलिन हृदय में बैठी हुई कालिमा की भांति चबूतरे पर बैठे हुए थे। आज चबूतरा खुद जाएगा। जरा देर तक और मेहनत करनी पड़ेगी। कोई चिंता नहीं। घर में लोग चिंतित हो रहें होंगे। पर अभी निश्चित हुआ जाता है कि चबूतरे के नीचे क्या है। पत्थर का तहखाना निकल आया तो समझ जाऊंगा कि धन अवश्य होगा। तहखाना न मिले तो मालूम हो जायेगा कि सब धोखा-ही-धोखा है। कहीं सचमुच तहखाना न मिले तो बड़ी दिल्लगी होगी। मुफ्त में उल्लू बनूं। पर नहीं, कुदाली खट-खट बोल रही है। हां, पत्थर की चट्टान है। उन्होंने टटोल कर देखा। भ्रम दूर हो गया। चट्टान थी। तहखाना मिल गया; लेकिन हरिदास खुशी से उछले-कूदे नहीं।

आज वे लौटे तो सिर में दर्द था। समझे थकान है। लेकिन यह थकान नींद से न गयी। रात को ही उन्हें जोर से बुखार हो गया। तीन दिन तक ज्वर में पड़े रहे। किसी दवा से फायदा न हुआ।

इस रुग्णावस्था में हरिदास को बार-बार भ्रम होता था - कहीं यह मेरी तृष्णा का दंड तो नहीं है। जी में आता था, मगन सिंह को बीजक दे दूं और क्षमा की याचना करूं, पर भंडाफोड़ होने का भय मुंह बन्द कर देता था। न जाने ईसा के अनुयायी अपने पादरियों के सम्मुख कैसे अपने जीवन भर के पापों की कथा सुनाया करते थे।

4

हरिदास की मृत्यु के पीछे यह बीजक उनके सुपुत्र प्रभुदास के हाथ लगा। बीजक मगनसिंह के पुरखों का लिखा हुआ है, इसमें लेशमात्र भी संदेह न था। लेकिन उन्होंने सोचा- पिताजी ने कुछ सोचकर ही इस मार्ग पर पग रखा होगा। वे कितने नीतिपरायण, कितने सत्यवादी पुरुष थे। उनकी नीयत पर कभी किसी को संदेह नहीं हुआ। जब उन्होंने इस आचार को घृणित नहीं समझा तो मेरी क्या गिनती है। कहीं यह धन हाथ आ जाये तो कितने सुख से जीवन व्यतीत हो। बड़े-बड़ों का सिर नीचा कर दूं। कोई आंखें न मिला सके। इरादा पक्का हो गया।

शाम होते ही वे घर से बाहर निकले। वही समय था, वही चौकन्नी आंखें थी और वहीं तेज कुदाली थी। ऐसा ज्ञात होता था मानो हरिदास की आत्मा इस नये भेष में अपना काम कर रही है।

चबूतरे का धरातल पहले ही खुद चुका था। अब संगीन तहखाना था, जोड़ों को हटाना कठिन था। पुराने जमाने का पक्का मसाला था, कुल्हाड़ी उचट-उचटकर लौट आती थी। कई दिनों में ऊपर की दरारें खुलीं, लेकिन चट्टानें जरा भी न हिली। तब वह लोहे की छड़ से काम लेने लगे, लेकिन कई दिनों तक जोर लगाने पर चट्टानें न खिसकीं। सब कुछ अपने ही हाथों करना था। किसी से सहायता न मिल सकती थी। यहां तक कि वही अमावस्या की रात आयी! प्रभुदास को जोर लगाते बारह बज गये और चट्टानें भाग्य रेखाओं की भांति अटल थी।

पर, आज इस समस्या को हल करना आवश्यक था। कहीं तहखाने पर किसी की निगाह पड़ जाये तो मेरे मन की लालसा मन ही मन में रह जाये।

वह चट्टान पर बैठकर सोचने लगे - क्या करूं, बुद्धि कुछ काम नहीं करती। सहसा उन्हें एक युक्ति सूझी, क्यों न बारूद से काम लूं? इतने अधीर हो रहे थे कि कल पर इस काम को न छोड़ सके। सीधे बाजार की तरफ चले। दो मील तक का रास्ता हवा की तरह तय किया। पर वहां पहुंचे तो दुकाने बंद हो चुकी थी। आतिशबाज़ हीले करने लगा। बारूद इस समय नहीं मिल सकती। सरकारी हुक्म नहीं है। तुम कौन हो? इस वक्त बारूद लेकर क्या करोगे? न भैया, कोई वारदात हो जाये तो मुफ्त में बंध-बंधा फिरूं, तुम्हें कौन पूछेगा?

प्रभुदास की शांत-वृत्ति कभी इतनी कठिन परीक्षा में न पड़ी थी। वे अंत तक अनुनय-विनय ही करते रहे, यहां तक मुद्राओं की सुरीली झंकार ने उसे वशीभूत कर लिया। प्रभुदास यहां से चले तो धरती पर पांव न पड़ते थे।

रात के दो बजे थे। प्रभुदास मंदिर के पास पहुंचे। चट्टानों की दरजों में बारुद रख पलीता लगा दिया और दूर भागे। एक क्षण में बड़े जोर का धमाका हुआ। चट्टान उड़ गयी। अंधेरा गार सामने था, मानो कोई पिशाच उन्हें निगल जाने के लिए मुंह खोले हुए है।

5

प्रभात का समय था। प्रभुदास अपने कमरे में लेटे हुए थे। सामने लोहे के संदूक में दस हजार पुरानी मोहरें रखी हुई थीं। उनकी माता सिरहाने बैठी पंखा झल रही थीं। प्रभुदास ज्वर की ज्वाला से जल रहे थे। करवटें बदलते थे, कराहते थे, हाथ-पांव पटकते थे; पर आंखें लोहे के संदूक की ओर लगी हुई थीं। इसी में उनके जीवन की आशाएं बन्द थीं।

मगनसिंह अब पजावे का मुंशी था। इसी घर में रहता था। आकर बोला- 'पजावे चलिएगा? गाड़ी तैयार कराऊं?'

प्रभुदास ने उसके मुख की ओर क्षमा-याचना की दृष्टि से देखा और बोले - नहीं, मैं आज न चलूंगा, तबीयत अच्छी नहीं है। तुम भी मत जाओ।

मगनसिंह उनकी दशा देखकर डॉक्टर को बुलाने चला।

दस बजते-बजते प्रभुदास का मुख पीला पड़ गया। आंखें लाल हो गयीं। माता ने उनकी ओर देखा तो शोक से विह्वल हो गयीं। बाबू हरिदास की अंतिम दशा उसकी आंखों में फिर गयी। जान पड़ता था, वह उसी शोक-घटना की पुनरावृत्ति है! वह देवताओं को मनौतियां मना रहीं थीं, किन्तु प्रभुदास की आंखें उसी लोहे के संदूक की ओर लगी हुई थीं, जिस पर उन्होंने अपनी आत्मा अर्पण कर दी थी।

उनकी स्त्री आकर उनके पैताने बैठ गयी और बिलख-बिलखकर रोने लगी। प्रभुदास की आंखों से भी आंसू बह रहे थे, पर वे आंखें उसी लोहे के संदूक की ओर निराशपूर्ण भाव से देख रहीं थीं।

घर में कोहराम मचा हुआ था। दोनों महिलाएं पछाड़े खा-खाकर गिरती थीं। मुहल्ले की स्त्रियां उन्हें समझाती थी। अन्य मित्रगण आंखों पर रूमाल जमाये हुए थे। जवानी की मौत संसार का सबसे करुण, सबसे अस्वाभाविक और सबसे भयंकर दृश्य है। यह वज्राघात की निर्दय लीला है। प्रभुदास का सारा शरीर प्राणहीन हो गया था, पर आंखें जीवित थीं। वे अब भी उसी संदूक की ओर लगी हुई थीं। जीवन ने तृष्णा का रूप धारण कर लिया था। सांस निकलती है, पर आस नहीं निकलती।

इतने में मगनसिंह सामने आकर खड़ा हो गया। प्रभुदास की निगाह उस पर पड़ी। ऐसा जान पड़ा मानों उनके शरीर में फिर रक्त का संचार हुआ। अंगों में स्फूर्ति के चिन्ह दिखाई दिये। इशारे से अपने मुंह के निकट बुलाया, उसके कान में कुछ कहा, एक बार लोहे के सन्दूक की ओर इशारा किया और आंखें उलट गयीं, प्राण निकल गये।

कज़ाकी

मेरी बाल-स्मृतियों में 'कज़ाकी' एक न मिटने वाला व्यक्ति है। आज चालीस साल गुजर गए, लेकिन कज़ाकी की मूर्ति अभी तक आंखों के सामने नाच रही है। मैं उन दिनों अपने पिता के साथ आजमगढ़ की एक तहसील में था। कज़ाकी जाति का पासी था, बड़ा ही हंसमुख, बड़ा ही साहसी, बड़ा ही जिंदादिल। वह रोज शाम को डाक का थैला लेकर आता, रातभर रहता और सवेरे डाक लेकर चला जाता । शाम को फिर उधर से डाक लेकर आ जाता। मैं दिनभर एक उद्विग्न दशा में उसकी राह देखा करता। ज्यों ही चार बजते, व्याकुल होकर, सड़क पर आकर खड़ा हो जाता और थोड़ी देर में कज़ाकी कंधे पर बल्लम रखे, उनकी झुंझुनी बजाता, दूर से दौड़ता हुआ आता दिखलाई देता। वह सांवले रंग का गठीला, लंबा जवान था। शरीर सांचे में ऐसा ढला हुआ कि चतुर मूर्तिकार भी उसमें कोई दोष न निकाल सकता। उसकी छोटी-छोटी मूछें, उसके चेहरे पर बहुत ही अच्छी मालूम होती थीं। मुझे देखकर और वह और तेज दौड़ने लगता, उसकी झंझुनी और ज़ोर से बजने लगती और मेरे हृदय में और जोर से खुशी की धड़कन होने लगती। हर्षातिरेक में मैं दौड़ पड़ता और एक क्षण में कज़ाकी का कंधा मेरा सिंहासन बन जाता। वह स्थान मेरी अभिलाषाओं का स्वर्ग था। स्वर्ग के निवासियों को भी शायद यह आंदोलित आनंद न मिलता होगा, जो मुझे कज़ाकी के विशाल कंधों पर मिलता था। संसार मेरी आंखों में तुच्छ हो जाता और जब कज़ाकी मुझे कंधे पर लिये हुए दौड़ने लगता, तब तो ऐसा मालूम होता, मानो मैं हवा के घोड़े पर उड़ा जा रहा हूं।

कज़ाकी डाकखाने में पहुंचता तो पसीने से तर रहता, लेकिन आराम करने की आदत न थी। थैला रखते ही वह हम लोगों को लेकर किसी मैदान में निकल जाता, कभी बिरहे गाकर सुनाता और कभी कहानियां सुनाता। उसे चोरी और डाकू, मार-पीट, भूत-प्रेत सैकड़ों कहानियां याद थी। मैं ये कहानियां सुनकर विस्मयपूर्ण आनंद में मग्न हो जाता। उसकी कहानियों के चोर और डाकू योद्धा होते थे, जो अमीरों को लूटकर दीन-दुखी प्राणियों का पालन करते थे । मुझे उन पर घृणा के बदले श्रद्धा होती थी।

2

एक दिन कज़ाकी को डाक का थैला लेकर आने में देर हो गई। सूर्यास्त हो गया और वह दिखलाई न दिया। मैं खोया हुआ-सा सड़क पर दूर तक आंखें फाड़-फाड़कर देखता था, पर वह परिचित रेखा दिखलाई न पड़ती थी। कान लगाकर सुनता था, 'झुन-झुन' की व आमोदमय ध्वनि सुनाई देती थी। प्रकाश के साथ मेरी आशा भी मलीन होती जाती थी। उधर से किसी को आते देखता तो पूछता- 'कज़ाकी आता है?, पर कोई सुनता ही न था या केवल सिर हिला देता था।'

सहसा 'झुनझुन' की वह आवाज़ कानों में आई। मुझे अंधेरे में चारों ओर भूत ही दिखलाई देते थे- यहां तक कि माताजी के कमरे में ताक पर रखी हुई मिठाई भी अंधेरा हो जाने के बाद, मेरे

लिए त्याज्य हो जाती थी, लेकिन वह आवाज सुनते ही मैं उसकी तरफ जोर से दौड़ा, हां, वह कज़ाकी ही था। उसके देखते ही मेरी विकलता क्रोध में बदल गई। मैं उसे मारने लगा, फिर रूठ करके अलग खड़ा हो गया।

कज़ाकी ने हंसकर कहा- 'मारोगे, तो मैं एक चीज लाया हूं, वह न दूंगा।'

मैंने साहस करके कहा- 'जाओ, मत देना, मैं लूंगा ही नहीं।

कज़ाकी- 'अभी दिखा दूं, तो दौड़कर गोद में उठा लोगे।'

मैंने पिघलकर कहा- अच्छा दिखा दो।

कज़ाकी- 'तो आकर मेरे कंधे पर बैठ जाओ, भाग चलूं। आज बहुत देर हो गई है। बाबूजी बिगड़ रहे होंगे।'

मैंने अकड़कर कहा- 'पहले दिखा।'

मेरी विजय हुई। अगर कज़ाकी को देर का डर न होता और वह एक मिनट भी और रुक गया, तो शायद पासा पलट जाता, उसने कोई चीज दिखलाई, जिसे वह एक हाथ से छाती से चिपटाए हुए था; लम्बा मुंह था और दो आंखें चमक रहीं थी।

मैंने दौड़कर उसे कज़ाकी की गोद से ले लिया। वह हिरण का बच्चा था। आह! मेरी उस खुशी का कौन अनुमान करेगा? तब से कठिन परीक्षाएं पास की, अच्छा पद भी पाया, रायबहादुर भी हुआ; पर वह खुशी फिर न हासिल हुई। मैं उसे गोद में लिये, उसके कोमल स्पर्श का आनंद उठाता घर की ओर दौड़ा। कज़ाकी को आने में क्यों इतनी देर हुई, इसका ख़याल ही न रहा।

मैंने पूछा- 'यह कहां मिला, कज़ाकी?'

कज़ाकी- भैया, यहां से थोड़ी दूर एक छोटा-सा जंगल है। उसमें बहुत से हिरण हैं। मेरा बहुत जी चाहता था कि कोई बच्चा मिल जाय, तो तुम्हें दूं। आज यह बच्चा हिरणों के झुंड के साथ दिखलाई दिया। मैं झुंड की ओर दौड़ा, तो सब-के-सब भागे। यह बच्चा भी भागा; लेकिन मैंने पीछा न छोड़ा। और हिरण तो बहुत दूर निकल गए, यही पीछे रह गया। मैंने इसे पकड़ लिया। इसी से इतनी देर हुई।'

यों बातें करते हम दोनों डाकखाने पहुंचे। बाबूजी ने मुझे न देखा, हिरण के बच्चे को भी न देखा, कज़ाकी ही पर उनकी निगाह पड़ी। बिगड़कर बोले- 'आज इतनी देर कहां लगाई? अब थैला लेकर आया है, उसे लेकर क्या करूं? डाक तो चली गई। बता, इतनी देर कहां लगाई?'

कज़ाकी के मुंह से आवाज़ न निकली।

बाबूजी ने कहा- 'तुझे शायद अब नौकरी नहीं करनी है। नीच है न, पेट भरा तो मोटा हो गया। जब भूखों मरने लगेगा, तो आंखें खुलेंगी।'

कज़ाकी चुपचाप खड़ा रहा।

बाबूजी का क्रोध और बढ़ा, बोले- 'अच्छा थैला रख दे और अपने घर की राह ले। सुअर, अब डाक लेके आया है। तेरा क्या बिगड़ेगा, जहां चाहेगा, मजूरी कर लेगा। माथे तो मेरे जायेगी- जवाब तो मुझे तलब होगा।

कज़ाकी- ने रुआंसे होकर कहा- सरकार, अब कभी देर न होगी।

बाबूजी– 'आज क्यों देर की, इसका जवाब दे?'

कज़ाकी के पास इसका कोई जवाब न था। आश्चर्य तो यह था कि मेरी भी जबान बंद हो गई। बाबूजी बड़े गुस्सेवर थे। उन्हें काम बहुत करना पड़ता था, इसी से बात-बात पर झुंझला पड़ते थे। मैं तो उनके सामने कभी जाता ही न था। वह भी मुझे कभी प्यार न करते थे। घर में केवल दो बार घंटे-घंटे भर के लिए भोजन करने आते थे; बाकी सारे दिन दफ्तर में लिखा करते थे। उन्होंने बार-बार एक सहकारी के लिए अफसरों से विनय की थी; पर इसका कुछ असर न हुआ था। यहां तक कि तातील के दिन भी बाबूजी दफ्तर ही में रहते थे। केवल माताजी उनका क्रोध शांत करना जानती थी; पर वह दफ्तर में कैसे आती।

बेचारा कज़ाकी उस वक्त मेरे देखते-देखते निकाल दिया गया। उसका बल्लम, चपरास और साफा छीन लिया गया और उसे डाकखाने से निकल जाने का नादिरी हुक्म सुना दिया। आह! उस वक्त मेरा ऐसा जी चाहता था कि मेरे पास सोने की लंका होती, तो कज़ाकी को दे देता और बाबूजी को दिखा देता कि आपके निकाल देने से कज़ाकी का बाल भी बांका नहीं हुआ। किसी योद्धा को अपनी तलवार पर जितना घमंड होता है, उतना ही घमंड कज़ाकी को अपनी चपरास पर था। जब वह चपरास खोलने लगा, तो उसके हाथ कांप रहे थे और आंखों से आंसू बह रहे थे और इस सारे उपद्रव की जड़ वह कोमल वस्तु थी, जो मेरी गोद में मुंह छिपाए ऐसे चैन से बैठी हुई थी, मानों माता की गोद में हो। जब कज़ाकी चला, तो मैं धीरे-धीरे उसके पीछे-पीछे चला। मेरे घर के द्वार पर आकर कज़ाकी ने कहा- भैया, अब घर जाओ, सांझ हो गई।'

मैं चुपचाप खड़ा अपने आंसुओं के वेग को सारी शक्ति से दबा रहा था। कज़ाकी फिर बोला- 'भैया, मैं कहीं बाहर थोड़े ही चला जाऊंगा, फिर आंऊगा और तुम्हें कंधे पर बैठाकर कुदाऊंगा। बाबूजी ने नौकरी ले ली है, तो क्या इतना भी नहीं करने देंगे। तुमको छोड़कर मैं कही न जाऊंगा, भैया! जाकर अम्मा से कह दो, कज़ाकी जाता है। उसका कहा-सुना माफ करें।'

मैं दौड़ा हुआ घर आया, लेकिन अम्माजी से कुछ कहने के बदले बिलख-बिलखकर रोने लगा। अम्माजी रसोई से बाहर निकल पूछने लगी- 'क्या हुआ, बेटा? किसने मारा? बाबूजी ने कुछ कहा है? अच्छा, रह तो जाओ, आज घर आते हैं, पूछती हूं जब देखो, मेरे लड़के को मारा करते हैं। चुप रहो बेटा, अब तुम उनके पास कभी मत जाना।'

मैंने बड़ी मुश्किल से आवाज संभालकर कहा- 'कज़ाकी...'

अम्मा ने समझा, कज़ाकी ने मारा है, बोली, आने दो कज़ाकी को, देखो, खड़े-खड़े निकलवा देती हूं। हरकारा होकर मेरे राजा बेटा को मारे। आज ही तो साफा, बल्लम सब छिनवाए लेती हूं। वाह!'

मैंने जल्दी से कहा- 'नहीं, कज़ाकी ने नहीं मारा। बाबूजी ने उसे निकाल दिया है, उसका साफा, बल्लम छीन लिया, चपरास भी ले ली।

अम्मा- 'यह तुम्हारे बाबूजी ने बहुत बुरा किया। वह बेचारा अपने काम में इतना चौकस रहता है। फिर उसे क्यों निकाला?'

मैंने कहा- 'आज उसे देर हो गई थी।'

यह कहकर मैंने हिरण के बच्चे को गोद से उतार दिया। घर में उसके भाग जाने का भय न था। अब तक अम्मा की निगाह भी उस पर न पड़ी थी। उसे फुदकते देखकर वह सहसा चौक पड़ी और लपककर मेरा हाथ पकड़ लिया कि कहीं वह भंयकर जीव मुझे काट न खाय! मैं कहां तो फूट-फूट कर रो रहा था और कहां अम्मा की घबराहट देखकर खिलखिलाकर हंस पड़ा।

अम्मा- 'अरे, यह तो हिरण का बच्चा है! कहां मिला?।'

मैंने हिरण के बच्चे का सारा इतिहास और उसका भीषण परिणाम आदि से अंत तक कह सुनाया। 'अम्मा, यह इतना तेज भागता था कि कोई दूसरा होता, तो पकड़ ही न सकता। सन-सन हवा की तरह उड़ता चला जाता था। कज़ाकी पांच-छः घंटे तक इसके पीछे दौड़ता रहा, तब कहीं जाकर बच्चा मिला। अम्माजी, कज़ाकी की तरह कोई दुनिया भर में नहीं दौड़ सकता, इसी से तो देर हो गई। इसलिए बाबूजी ने बेचारे को निकाल दिया- चपरास, साफा, बल्लम सब छीन लिया। अब बेचारा क्या करेगा? भूखों मर जायेगा।'

अम्मा ने पूछा- 'बाहर तो खड़ा है। कहता था, अम्माजी से मेरा कहा-सुना माफ करवा देना।'

अब तक अम्माजी मेरे वृतांत को दिल्लगी समझ रही थीं। शायद वह समझती थी कि बाबूजी ने कज़ाकी को डांटा होगा, लेकिन मेरा अंतिम वाक्य सुनकर संशय हुआ कि सचमुच तो कज़ाकी बर्खास्त नहीं कर दिया गया? बाहर आकर 'कज़ाकी! कज़ाकी' पुकारने लगीं, पर कज़ाकी का कहीं पता न था। मैंने बार-बार पुकारा, लेकिन कज़ाकी वहां न था।

खाना तो मैंने खा लिया- बच्चे शोक में खाना नहीं छोड़ते, खासकर जब रबड़ी भी सामने हो। मगर बड़ी रात तक पड़े सोचता रहा- मेरे पास रुपये होते, तो एक लाख रुपये कज़ाकी को दे देता और कहता -बाबूजी से कभी मत बोलना। बेचारा भूखों मर जायेगा! देखूं कल आता है कि नहीं। अब क्या करेगा आकर? मगर आने को कह गया है। मैं कल उसे अपने साथ खाना खिलाऊंगा।

यही हवाई किले बनाते-बनाते मुझे नींद आ गयी।

3

दूसरे दिन मैं दिनभर अपने हिरण के बच्चे के सेवा-सत्कार में व्यस्त रहा। पहले उसका नामकरण-संस्कार हुआ। 'मुन्नू' नाम रखा गया। फिर मैंने उसका अपने सब हमजोलियों और सहपाठियों से परिचय कराया। दिन ही भर में वह मुझ से इतना हिल गया कि मेरे पीछे-पीछे दौड़ने लगा। इतनी ही देर में मैंने उसे अपने जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान दे दिया। अपने भविष्य में बनाने वाले विशाल भवन में उसके लिए अलग कमरा बनने का भी निश्चय कर लिया, चारपाई,

सैर करने की फिटन आदि की भी आयोजना कर ली।

लेकिन संध्या होते ही मैं सब कुछ छोड़-छाडकर सड़क पर जा खड़ा हुआ और कज़ाकी निकाल दिया गया है, अब उसे यहां आने की कोई जरूरत नहीं रही। फिर भी न जाने मुझे क्यों यह आशा हो रही थी कि वह आ रहा है। एकाएक मुझे खयाल आया कि कज़ाकी भूखों मर रहा होगा। मैं तुरन्त घर आया। अम्मां दिया-बत्ती कर रही थी। मैंने चुपके से एक टोकरी में आटा निकाला, आटा हाथों में लपेटे टोकरी से गिरते आटे की एक लकीर बनाता हुआ भागा। आकर सड़क पर खड़ा हुआ ही था कि कज़ाकी सामने से आता दिखालाई दिया। उसके पास बल्लम भी थी, कमर में चपरास भी थी, सिर पर साफा भी बंधा हुआ था। बल्लम में डाक का थैला भी बंधा हुआ था। मैं दौड़कर उसकी कमर से चिपट गया और विस्मित होकर बोला- 'तुम्हें चपरास और बल्लम कहां से मिल गया, कज़ाकी?'

कज़ाकी ने मुझे कंधे पर बैठाते हुए कहा- 'वह चपरास किस काम की थी, भैया? वह तो गुलामी की चपरास थी, यह पुरानी खुशी की चपरास है। पहले सरकार का नौकर था, अब तुम्हारा नौकर हूं।'

यह कहते-कहते उसकी निगाह टोकरी पर पड़ी थी, जो वहीं रखी थी। बोला- यह आटा कैसा है, भैया?

मैंने सकुचाते हुए कहा- 'तुम्हारे ही लिये तो लाया हूं। तुम भूखे होगे, आज क्या खाया होगा?'

कज़ाकी की आंखें तो मैं न देख सका, उसके कंधे पर बैठा हुआ था, हां, उसकी आवाज से मालूम हुआ कि उसका गला भर आया है, बोला- 'भैया। क्या रूखी ही रोटियां खाऊंगा?'

दाल, नमक, घी- 'और तो कुछ नहीं है।'

मैं अपनी भूल पर लज्जित हुआ। सच तो है, बेचारा रूखी रोटियां कैसे खायेगा? लेकिन नमक, दाल, घी कैसे लाऊं? अब तो अम्मां चौके में होगी। आटा लेकर तो किसी तरह भाग आया था। (अभी तक मुझे न मालूम था कि मेरी चोरी पकड़ ली गई। आटे की लकीर ने सुराग दे दिया है) अब ये तीन-तीन चीज़ें कैसे लाऊंगा? अम्मा से मांगूगा, तो कभी न देंगी। एक-एक पैसे के लिए तो घंटों रुलाती हैं, इतनी सारी चीजें क्यों देने लगीं? एकाएक मुझे एक बात याद आई। मैंने अपनी किताबों के बस्तों में कई आने पैसे रख छोड़े थे। मुझे पैसे जमा करके रखने में बड़ा आनन्द आता था। मालूम नहीं, अब वह आदत क्यों बदल गई।

अब भी वही हालत होती तो शायद इतना फाकेमस्त न रहता।

बाबूजी मुझे प्यार तो कभी न करते थे, पर पैसे खूब देते थे, शायद अपने काम में व्यस्त रहने के कारण, मुझसे पिंड छुड़ाने के लिए इसी नुस्खे को सबसे आसान समझते थे। इनकार करने में मेरे रोने और मचलने का भय था। इस बाधा को वह दूर ही से टाल देते थे। अम्मा जी का स्वभाव इससे ठीक प्रतिकूल था। उन्हें मेरे रोने और मचलने से किसी काम में बाधा पड़ने का भय न था। आदमी लेटे-लेटे दिन भर रोना सुन सकता है; हिसाब लगाते हुए जोर की आवाज से ध्यान बंट

जाता है। अम्मा मुझे प्यार तो बहुत करती थी; पर पैसे का नाम सुनते ही उनकी त्योरियां बदल जाती थी। मेरे पास किताबें न थी। हां, एक बस्ता था, जिसमें डाकखाने के दो-चार फार्म तह करके पुस्तक रूप में रखे हुए थे। मैंने सोचा- 'आटा, दाल, नमक और घी के लिए क्या उतने पैसे काफी न होंगे? मेरी तो मुट्ठी में नहीं आते। यह निश्चय करके मैंने कहा- अच्छा, मुझे उतार दो, तो मैं दाल और नमक ला दूं; मगर रोज आया करोगे न?'

कज़ाकी- 'भैया, खाने को दोगे, तो क्यों न आऊंगा।'

मैंने कहा- 'मैं रोज़ खाने को दूंगा।'

कज़ाकी बोला- 'तो मैं रोज आऊंगा।'

मैं नीचे उतरा और दौड़कर सारी पूंजी उठा लाया। कज़ाकी को नेज बुलाने के लिए उस वक्त मेरे पास कोहिनूर हीरा भी होता, तो उसकी भेंट करने में मुझे पशोपेश न होता।

कज़ाकी ने विस्मित होकर पूछा- 'ये पैसे कहां पाये, भैया?

मैंने गर्व से कहा-मेरे ही तो हैं।

कज़ाकी- 'तुम्हारी अम्माजी तुमको मारेंगी। कहेंगी- कज़ाकी ने फुसलाकर मंगवा लिए होंगे। भैया इन पैसों की मिठाई ले लेना और आटा मटके में रख देना। मैं भूखों नहीं मरता। मेरे दो हाथ हैं। मैं भला भूखों मर सकता हूं?'

मैंने बहुत कहा कि पैसे मेरे हैं, लेकिन कज़ाकी ने न लिये । उसने बड़ी देर तक-इधर-उधर कर सैर कराई, गीत सुनाए और मुझे घर पहुंचाकर चला गया। मेरे द्वार पर आटे की टोकरी भी रख दी।

मैंने घर में कदम रखा ही था कि अम्मा जी ने डांटकर कहा- 'क्यों रे चोर, तू आटा कहां ले गया था? अब चोरी करना सीखता है? बता, किसको आटा दे आया, नहीं तो तेरी खाल उधेड़ कर रख दूंगी।'

मेरी नानी मर गई। अम्मा क्रोध में सिंहनी हो जाती थी। सिटपिटाकर बोला- 'किसी को तो नहीं दिया।'

अम्मा- 'तूने आटा नहीं निकाला? देख कितना आटा सारे आंगन में बिखरा पड़ा है?' मैं चुप खड़ा था। वह कितना ही धमकाती थी, पुचकारती थी, पर मेरी जुबान न खुलती। आने वाली विपत्ति के भय से प्राण सूख रहे थे। यहां तक कि यह भी कहने की हिम्मत न पड़ती थी कि बिगड़ती क्यों हो, आटा तो द्वार पर रखा हुआ है, और न उठाकर लाते ही बनता था, मानो- 'क्रिया-शक्ति ही लुप्त हो गई हो, मानों पैरों में हिलने की सामर्थ्य ही नहीं।

सहसा कज़ाकी ने पुकारा- 'बहूजी, आटा द्वार पर रखा हुआ है। भैया मुझे देने को ले गये थे।'

यह सुनते ही अम्मा द्वार की ओर चली गई' कज़ाकी से वह परदा न करती थीं। उन्होंने कज़ाकी से कोई बात की या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन अम्माजी खाली टोकरी लिए

हुए घर में आई। फिर कोठरी में जाकर संदूक से कुछ निकाला और द्वार की ओर गई। मैंने देखा कि उनकी मुट्ठी बंद थी। अब मुझसे वहां खड़े न रह गया।

अम्माजी के पीछे-पीछे मैं भी गया। अम्मा ने द्वार पर कई बार पुकारा, मगर कज़ाकी चला गया था।

मैंने बड़ी धीरता से कहा- 'मैं जाकर खोज लाऊँ, अम्माजी?' अम्माजी ने किवाड़ बंद करते हुए कहा -'तुम अंधेरे में कहां जाओगे, अभी तो यहीं खड़ा था। 'मैंने कहा कि यहीं रहना, मैं आती हूं। तब तक न जाने कहां खिसक गया। बड़ा संकोची है। आटा तो लेता ही न था। मैंने जबरदस्ती उसके अंगोछे में बांध दिया। मुझे तो बेचारे पर बड़ी दया आती हैं न जाने बेचारे के घर में कुछ खाने को है कि नहीं। रुपये लायी थी कि दे दूंगी, पर न जाने कहां चला गया। अब तो मुझे भी साहस हुआ। मैंने अपनी चोरी की पूरी कथा कह डाली। बच्चों के साथ समझदार बच्चे बनकर मां-बाप उन पर जितना असर डाल सकते है, जितनी शिक्षा दे सकते है, उतने बूढ़े बनकर नहीं।

अम्मा जी ने कहा- 'तुमने मुझसे पूछ क्यों न लिया? क्या मैं कज़ाकी को थोड़ा-सा-आटा न देती?'

मैंने उसका उत्तर न दिया। दिल में कहा- इस वक्त तुम्हें कज़ाकी पर दया आ गई है, जो चाहे दे डालो, लेकिन मैं मांगता, तो मारने दौड़ती। हां, यह सोचकर चित्त प्रसन्न हुआ कि अब कज़ाकी भूखों न मरेगा। अम्माजी उसे रोज खाने को देंगी और वह रोज मुझे कंधे पर बिठाकर सैर कराएगा।

दूसरे दिन मैं दिनभर मुन्नू के साथ खेलता रहा। शाम को सड़क पर जाकर खड़ा हो गया। मगर अंधेरा हो गया और कज़ाकी का कहीं पता नहीं। दिये जल गए, रास्ते में सन्नाटा छा गया, पर कज़ाकी न आया।

मैं रोता हुआ घर आया। अम्माजी ने पूछा- 'क्यों रोते हो बेटा? कज़ाकी नहीं आया? मैं और जोर से रोने लगा। अम्माजी ने मुझे छाती से लगा लिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उनका कंठ भी गदगद हो गया है।

उन्होंने कहा- 'बेटा, चुप हो जाओ। मैं कल किसी हरकारे को भेजकर कज़ाकी को बुलवाऊँगी।'

मैं रोते-रोते ही सो गया। सवेरे ज्यों ही आंखें खुली। मैंने अम्माजी से कहा-कज़ाकी को बुलवा दो।

अम्मा ने कहा- 'आदमी गया है बेटा! कज़ाकी आता होगा। मैं खुश होकर खेलने लगा। मुझे मालूम था कि अम्माजी जो बात कहती है, उसे पूरा जरूर करती है। उन्होंने सवेरे ही एक हरकारे को भेज दिया। दस बजे जब मैं मुन्नू को लिए हुए घर आया, तो मालूम हुआ कि कज़ाकी अपने घर पर ही नहीं मिला। वह रात को भी घर न गया था। उसकी स्त्री रो रही थी कि न जाने कहां

चले गए। उसे भय था कि वह कहीं भाग गया है।

बालकों का हृदय कितना कोमल होता है, इसका अनुमान दूसरा नहीं कर सकता। उनमें अपने भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं होते। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि कौन-सी बात उन्हें विकल कर रही है, कौन-सा कांटा उनके हृदय में खटक रहा है; क्यों बार-बार उन्हें रोना आता है, क्यों वे मन मारे बैठे रहते हैं, खेलने में जी नहीं लगता? मेरी भी यही दशा थी। कभी घर में आता, कभी बाहर जाता, कभी सड़क पर जा पहुंचता। आंखें कज़ाकी को ढूंढ रही थीं। वह कहां चला गया? कहीं भाग तो नहीं गया?

तीसरे पहर को मैं खोया हुआ-सा सड़क पर खड़ा था। सहसा मैंने कज़ाकी को एक गली में देखा। हां, वह कज़ाकी ही था। मैं उसकी ओर चिल्लाता हुआ दौड़ा; पर गली में उसका पता न था, न जाने किधर गायब हो गया। मैंने गली में इस सिरे से उस सिरे तक देखा, मगर कहीं कज़ाकी की गंध तक न मिली।

घर आकर मैंने अम्माजी से यह बात कही। मुझे ऐसा जान पड़ा कि वह यह बात सुनकर बहुत चिंतित हो गई।

इसके बाद दो-तीन दिन तक कज़ाकी न दिखाई दिया। मैं भी अब उसे कुछ भूलने लगा। बच्चे पहले जितना प्रेम करते हैं, बाद को उतने ही निष्ठुर भी हो जाते हैं। जिस खिलौने पर प्राण देते है, उसी को दो-चार दिन के बाद पटककर फोड़ डालते हैं।

दस-बारह दिन और बीत गए। दोपहर का समय था। बाबूजी खाना खा रहे थे। मैं मुन्नू के पैरों में पीनस की पैजनियां बांध रहा था। एक औरत घूंघट निकाले हुए आई और आंगन में खड़ी हो गई। उसके कपड़े फटे हुए और मैले थे, पर गोरी, सुंदर स्त्री थी। उसने मुझसे पूछा- 'भैया, बहूजी कहां है?'

मैंने उनके पास जाकर उसका मुंह देखते हुए कहा- 'तुम कौन हो, क्या बेचती हो?'

औरत- 'कुछ बेचती नहीं हूं तुम्हारे लिए ये कमल गट्टे लायी हूं। भैया, तुमको कमल गट्टे बहुत अच्छे लगते है न?'

मैंने उसके हाथों से लटकती हुई पोटली को उत्सुक नेत्रों से देखकर पूछा- 'कहां से लायी हो? देखें।'

औरत- 'तुम्हारे हरकारे ने भेजा है, भैया!'

मैने उछलकर पूछा- कज़ाकी ने।

औरत ने सिर हिलाकर 'हां' कहा और पोटली खोलने लगी। इतने में अम्माजी भी रसोई से निकल आई। उसने अम्मा के पैरों का स्पर्श किया। अम्मा ने पूछा- 'तू कज़ाकी की घरवाली है?'

औरत ने सिर झुका लिया।

अम्मा- 'आजकल कज़ाकी क्या करता है?'

औरत ने रोकर कहा- 'बहूजी, जिस दिन से आपके पास से आटा लेकर गये हैं, उसी दिन से बीमार पड़े हैं, बस, भैया-भैया किया करते हैं। भैया ही में उनका मन बसा रहता है। चौंक-चौंककर 'भैया-भैया' कहते हुए द्वार की ओर दौड़ते हैं। न जाने उन्हें क्या हो गया है, बहूजी! एक दिन मुझसे कुछ कहा न सुना, घर से चल दिए और एक गली में छिपकर भैया को देखते रहे। जब भैया ने उन्हें देख लिया, तो भागे। तुम्हारे पास आते हुए लजाते हैं।'

मैंने कहा- 'हां-हां, मैंने उस दिन तुमसे जो कहा था, अम्माजी।'

अम्मा- 'घर में कुछ खाने-पीने को है?'

औरत- 'हां, बाबूजी, तुम्हारे आशीर्वाद से खाने-पीने का दु:ख नहीं है। आज सवेरे उठे और तालाब की ओर चले गए। बहुत कहती रही, बाहर मत जाओ। हवा लग जायेगी। मगर न माना! मारे कमजोरी के पैर कांपने लगते हैं, मगर तालाब में घुसकर ये कमलगट्टे तोड़ लाए। तब मुझसे कहा- 'ले जा, भैया को दे आ। उन्हें कमलगट्टे बहुत अच्छे लगते हैं। कुशल-क्षेम पूछती आना।'

मैंने पोटली से कमलगट्टे निकाल लिए थे और मजे से चख रहा था। अम्मा ने बहुत आंखें दिखाई, मगर यहां इतना सब्र कहां!

अम्मा ने कहा- 'कह देना सब कुशल है।'

मैंने कहा- 'यह भी कह देना कि भैया ने बुलाया है। न जाओगे तो फिर तुमसे कभी न बोलेंगे, हां।'

बाबूजी खाना खाकर निकल आये। तौलिये से हाथ-मुंह पोंछते हुए बोले- 'और यह भी कह देना कि साहब ने तुमको बहाल कर दिया है। जल्दी जाओ नहीं तो कोई दूसरा आदमी रख लिया जायेगा।'

औरत ने अपना कपड़ा उठाया और चली गई। अम्मा ने बहुत पुकारा, पर वह न रुकी। शायद अम्माजी उसे सीधा देना चाहती थी।

अम्मा ने पूछा- 'सचमुच बहाल हो गया?'

बाबूजी- 'और क्या झूठे ही बुला रहा हूं। मैंने तो पांचवें ही दिन बहाली की रिपोर्ट की थी।'

अम्मा- 'यह तुमने बहुत अच्छा किया।'

बाबूजी- 'उसकी बीमारी की यही दवा है।'

4

प्रात:काल उठा तो क्या देखता हूं कि कज़ाकी लाठी टेकता हुआ चला आ रहा है। वह बहुत दुबला हो गया था, मालूम होता था, बूढ़ा हो गया है। हरा-भरा पेड़ सूखकर ठूंठ हो गया है। मैं उसकी ओर दौड़ा और उसकी कमर से चिपट गया। कज़ाकी आ गया। कज़ाकी ने मारे गाल चूमे और मुझे उठाकर कंधे पर बिठाने की चेष्टा करने लगा; पर मैं न उठ सका। तब वह जानवरों की भांति भूमि पर हाथों और घुटनों के बल खड़ा हो गया और मैं उसकी पीठ पर सवार होकर

डाकखाने की ओर चला। मैं उस वक्त फूला न समाता था और शायद कज़ाकी मुझसे भी ज्यादा खुश था।

बाबूजी ने कहा- 'कज़ाकी, तुम बहाल हो गए। अब कभी देर न करना।'

कज़ाकी रोता हुआ पिताजी के पैरों पर गिर पड़ा, मगर शायद मेरे भाग्य में दोनों सुख भोगना नहीं लिखा था- मुन्नू मिला, तो कज़ाकी छूटा, कज़ाकी आया तो मुन्नू हाथ से गया और ऐसा गया कि आज तक उसके जाने का दु:ख है। मुन्नू मेरी ही थाली में खाता था। जब तक मैं खाने न बैठूं, वह भी कुछ न खाता था। उसे भात से भी बहुत रुचि थी, लेकिन जब तक खूब घी न पड़ा हो, उसे संतोष न होता था। वह मेरे ही साथ सोता था और मेरे ही साथ उठता भी था। सफाई तो उसे इतनी पसंद थी कि मल-मूत्र त्याग करने के लिए घर से बाहर मैदान में निकल जाता था। कुत्तों से उसे चिढ़ थी। कुत्ते को घर में न घुसने देता था। कुत्ते को देखते ही थाली से उठ जाता था और उसे दौड़कर घर से बाहर निकाल देता था।

कज़ाकी को डाकखाने में छोड़कर जब मैं खाना खाने गया, तो मुन्नू भी आ बैठा। अभी दो-चार ही कौर खाये थे कि एक बड़ा-सा झबरा कुत्ता आंगन में दिखाई दिया। मुन्नू उसे देखते ही दौड़ा। दूसरे घर में जाकर कुत्ता भी चूहा हो जाता है। झबरा कुत्ता उसे देखकर भागा, मुन्नू को अब लौट आना चाहिए था; मगर वह कुत्ता उसके लिए यमराज का दूत था। मुन्नू को उसे घर से निकालकर ही संतोष न हुआ। वह उसे घर के बाहर मैदान में भी दौड़ाने लगा। मुन्नू को शायद खयाल न रहा कि यहां मेरी अमलदारी नहीं है। वह उस क्षेत्र में पहुंच गया था, जहां झबरे को भी उतना ही अधिकार था, जितना मुन्नू का। मुन्नू कुत्तो को भगाते-भगाते कदाचित अपने बाहुबल पर घमंड करने लगा था। वह यह न समझता था कि घर में उसकी पीठ पर घर के स्वामी का भय काम किया करता है। झबरे ने इस मैदान में आते ही उलटकर मुन्नू की गर्दन दबा दी। बेचारे मुन्नू के मुंह से आवाज तक न निकली। जब पड़ोसियों ने शोर मचाया, तो दौड़ा। देखा तो मुन्नू मरा पड़ा है। और झबरे का कहीं पता नहीं।

पिसनहारी का कुआँ

गोमती ने मृत्यु-शैया पर पड़े हुए चौधरी विनायकसिंह से कहा– 'चौधरी, मेरे जीवन की यही लालसा थी।'

चौधरी ने गम्भीर होकर कहा- 'इसकी कुछ चिंता न करो काकी, तुम्हारी लालसा भगवान् पूरी करेंगे। मैं आज ही से मजूरों को बुलाकर काम पर लगाये देता हूं। दैव ने चाहा, तो तुम अपने कुएं का पानी पियोगी। तुमने तो गिना होगा, कितने रुपये हैं?'

गोमती ने एक क्षण आंखें बंद करके, बिखरी हुई स्मृति को एकत्र करके कहा- 'भैया मैं क्या जानूं, कितने रुपये हैं? जो कुछ है, वह इसी हांड़ी में है। इतना करना कि इतने ही में काम चल जाय। किसके सामने हाथ फैलाते फिरोगे?'

चौधरी ने बंद हांड़ी को उठाकर हाथों से तोलते हुए कहा- 'ऐसा तो करेंगे ही काकी, कौन देने वाला है। एक चुटकी भीख तो किसी के घर से निकलती नहीं, कुआं बनवाने को कौन देता है? धन्य हो तुम कि अपनी उम्र भर की कमाई इस धर्म-काज के लिए दे दी।'

गोमती ने गर्व से कहा- 'भैया, तुम तो तब बहुत छोटे थे। तुम्हारे काका मरे तो हाथ में एक कौड़ी भी न थी। दिन-दिनभर भूखी पड़ी रहती। जो कुछ उनके पास था। वह सब उनकी बीमारी में उठ गया। वह भगवान के बड़े भक्त थे, इसलिए भगवान ने उन्हें जल्दी से बुला लिया। उस दिन से आज तक तुम देख रहे हो कि किस तरह दिन काट रही हूं। मैंने एक-एक रात में मन-मन भर अनाज पीसा है; बेटा देखने वाले अचरज मानते थे। न जाने इतनी ताकत मुझमें कहां से आ जाती थी। बस, यही लालसा रही कि उसके नाम का एक छोटा-सा कुंआ गांव में बन जाय। नाम तो चलना चाहिए, इसलिए तो आदमी बेटे-बेटी को रोता है।

इस तरह चौधरी विनायकसिंह को वसीयत करके, उसी रात को बुढ़िया गोमती परलोक सिधारी। मरते समय अंतिम शब्द, जो उसके मुख से निकले, वे यही थे- कुआं बनवाने में देर न करना। उसके पास धन है, यह तो लोगों का अनुमान था । लेकिन दो हजार है, इसका किसी को अनुमान न था। बुढ़िया अपने धन को ऐब की तरह छिपाती थी। चौधरी गांव का मुखिया और नीयत का साफ आदमी था। इसलिए बुढ़िया ने उससे यह अंतिम आदेश किया था।

2

चौधरी ने गोमती के क्रिया-कर्म में बहुत रुपये खर्च न किये। ज्यों ही इन संस्कारों से छुट्टी मिली, वह अपने बेटे हरनाथ सिंह को बुलाकर ईंट, चूना, पत्थर का तखमीना करने लगे। हरनाथ अनाज का व्यापार करता था। कुछ देर तक तो वह बैठा सुनता रहा, फिर बोला- 'अभी दो-चार महीने कुआं न बने तो कोई बड़ा हरज है?

चौधरी ने 'हुँह!' करके कहा- 'हरज तो कुछ नहीं, लेकिन देर करने का काम ही क्या है।

रुपये उसने दे ही दिये है, हमें तो सेंत में यश मिलेगा। गोमती ने मरते-मरते जल्द कुआं बनवाने को कहा था।'

हरनाथ- 'हां, कहा तो था, लेकिन आजकल बाजार अच्छा है। दो-तीन हजार का अनाज भर लिया जाय, तो अगहन-पूस तक सवाया हो जायेगा। मैं आपको कुछ सूद दे दूंगा, चौधरी का मन शंका और भय से दुविधा में पड़ गया। दो हजार के कहीं ढाई हजार हो गये, तो क्या कहना। जगमोहन में कुछ बेल-बूटे बनवा दूंगा। लेकिन भय था कि कहीं घाटा हो गया तो? इस शंका को वह छिपा न सके, बोले- 'जो कहीं घाटा हो गया तो?'

हरनाथ ने तड़पकर कहा- 'घाटा क्या हो जायेगा, कोई बात है?'

'मान लो, घाटा हो गया तो?'

हरनाथ ने उत्तेजित होकर कहा- 'यह कहो कि तुम रुपये नहीं देना चाहते, बड़े धर्मात्मा बने हो!'

अन्य वृद्धजनों की भांति चौधरी भी बेटे से दबते थे। कातर स्वर में बोले- 'मैं यह कब कहता हूं कि रुपये न दूंगा। लेकिन पराया धन है, सोच-समझकर ही तो उसमें हाथ लगाना चाहिए। बीज-व्यापार का हाल कौन जानता है? कहीं भाव और गिर जाय तो? अनाज में घुन ही लग जाय, कोई मुद्दई घर में आग लगा दे। सब बातें सोच लो अच्छी तरह।'

हरनाथ ने व्यंग से कहा- 'इस तरह सोचना है, तो यह क्यों नहीं सोचते कि कोई चोर ही उठा ले जाय; या बनी-बनायी दीवार बैठ जाय? ये बातें भी तो होती ही हैं।

चौधरी के पास अब और कोई दलील न थी, कमजोर सिपाही ने ताल तो ठोंकी, अखाड़े में उतर पड़ा; पर तलवार की चमक देखते ही हाथ-पांव फूल गये। बगलें झांककर चौधरी ने कहा- 'तो कितना लोगे?'

हरनाथ कुशल योद्धा की भांति, शत्रु को पीछे हटता देखकर, बिफरकर बोला- 'सब कासब दीजिए, सौ-पचास रुपये देते किसी ने न देखा था। लोकनिंदा की संभावना भी न थी। हरनाथ ने अनाज भरा। अनाजों के बोरों का ढेर लग गया। आराम की मीठी नींद सोने वाले चौधरी अब सारी रात बोरों की रखवाली करते थे, मजाल न थी कि कोई चुहिया बोरों में घुस जाये। चौधरी इस तरह झपटते थे कि बिल्ली भी हार मान लेती। इस तरह छः महीने बीत गये। पौष में अनाज बिका, पूरे 500 रु. का लाभ हुआ।

हरनाथ ने कहा- 'इसमें से 50 रु. आप ले लें।'

चौधरी ने झल्लाकर कहा- '50 रु. क्या खैरात ले लूं? किसी महाजन से इतने रुपये लिये होते तो कम-से कम 200 रु. सूद के होते; मुझे तुम दो-चार रुपये कम दे दो, और क्यों करोगे?

हरनाथ ने बतबढ़ाव न किया। 150 रु. चौधरी को दे दिए। चौधरी की आत्मा इतनी प्रसन्न कभी न हुई। रात को वह अपनी कोठरी में सोनू गया, तो कलेजा धक-धक करने लगा। वह नींद में न था। कोई नशा न खाया था। गोमती सामने खड़ी मुस्कुरा रही थी। हां, उस मुरझाये हुए मुख पर

एक विचित्र स्फूर्ति थी।

3

कई साल बीत गये। चौधरी बराबर इस फिक्र में रहते कि हरनाथ से रुपये निकाल लूं लेकिन हरनाथ हमेशा ही हील-हवाले करता रहता था। वह साल में थोड़ा-सा ब्याज दे देता, पर मूल के लिए हजार बातें बनाता था। कभी लेहने का रोना था, कभी चुकते का। हां, कारोबार बढ़ता जाता था। आखिर एक दिन चौधरी ने उससे साफ-साफ कह दिया कि तुम्हारा काम चले या डूबे। मुझे परवाह नहीं, इस महीने में तुम्हें अवश्य रुपये चुकाने पड़ेंगे। हरनाथ ने बहुत उड़नघाइयां बतायी, पर चौधरी अपने इरादे पर जमे रहे।

हरनाथ ने झुंझलाकर कहा- 'कहता हूं कि दो महीने और ठहरिए। माल बिकते ही मैं रुपये दे दूंगा।'

चौधरी ने दृढ़ता से कहा- 'तुम्हारा माल कभी न बिकेगा, और न तुम्हारे दो महीने कभी पूरे होंगे। मैं आज रुपये लूंगा।'

हरनाथ उसी वक्त क्रोध में भरा हुआ उठा और दो हजार रुपये लाकर चौधरी के सामने जोर से पटक दिये।

चौधरी ने कुछ झेंपकर कहा- 'रुपये तो तुम्हारे पास थे।'

'और क्या बातों से रोजगार होता है?'

'तो मुझे इस समय 500 रु. दे दो, बाकी दो महीने में देना। सब आज ही तो खर्च न हो जायेंगे।'

हरनाथ ने ताव दिखाकर कहा- 'आप चाहे खर्च कीजिए, चाहे जमा कीजिए, मुझे रुपयों का काम नहीं। दुनिया में क्या महाजन मर गए हैं, जो आपकी धौंस सहूं?'

चौधरी ने रुपये उठाकर एक ताक पर रख दिये। कुएं की दागबेल डालने का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया।

हरनाथ ने रुपये लौटा तो दिये थे, पर मन में कुछ और मंसूबा बांध रखा था। आधी रात को जब घर में सन्नाटा छा गया, तो हरनाथ चौधरी के कोठरी की चूल खिसकाकर अंदर घुसा । चौधरी बेखबर सोये थे। हरनाथ ने चाहा कि दोनों थैलियां उठाकर बाहर निकल जाऊँ, लेकिन ज्यों ही हाथ बढ़ाया, उसे अपने सामने गोमती खड़ी दिखायी दी। वह दोनों थैलियों को दोनों हाथों से पकड़े हुए थी। हरनाथ भयभीत होकर पीछे हट गया।

फिर यह सोचकर कि शायद मुझे धोखा हो रहा हो, उसने फिर हाथ बढ़ाया, पर अबकी वह मूर्ति इतनी भयंकर हो गयी कि हरनाथ एक क्षण भी वहां खड़ा न रह सका। भागा, पर बरामदे ही में अचेत होकर गिर पड़ा।

4

हरनाथ ने चारों तरफ से अपने रुपये वसूल करके व्यापारियों को देने के लिए जमा कर रखे थे। चौधरी ने आंखें दिखायी, तो वही रुपये लाकर पटक दिया। दिल में उसी वक्त सोच लिया था कि रात को रुपये उड़ा लाऊंगा। झूठ-मूठ चोर का गुल मचा दूंगा, तो मेरी ओर संदेह भी न होगा। पर जब यह पेश बंदी ठीक न उतरी, तो उस पर व्यापारियों के तगादे होने लगे। वादों पर लोगों को कहां तक टालता, जितने बहाने हो सकते थे, सब किये। आखिर वह नौबत आ गयी कि लोग नालिश करने की धमकियां देने लगे। एक ने 300 रु. की नालिश कर भी दी। बेचारे चौधरी बड़ी मुश्किल में फंसे। दुकान पर हरनाथ बैठता था, चौधरी को उससे कोई वास्ता न था, पर उसकी जो साख थी वह चौधरी के कारण। लोग चौधरी को खरा और लेन-देन का साफ आदमी समझते थे। अब भी यद्यपि कोई उनसे तकाजा न करता था, पर वह सबसे मुंह छिपाते फिरते थे। लेकिन उन्होंने यह निश्चय कर लिया था, कुएं के रुपये न छुऊंगा चाहे जो कुछ आ पड़े।

रात को एक व्यापारी के मुसलमान चपरासी ने चौधरी के द्वार पर आकर हजारों गालियां दी। चौधरी को बार-बार क्रोध आता था कि चलकर मूंछें उखाड़ लूं, पर मन को समझाया, हमसे मतलब ही क्या है, बेटे का कर्ज चुकाना बाप का धर्म नहीं है।

जब भोजन करने गये, तो पत्नी ने कहा- 'यह सब क्या उपद्रव मचा रखा है?'

'और किसने मचा रखा है? बच्चा कसम खाते है कि मेरे पास केवल थोड़ा सा-माल है, रुपये तो सब तुमने मांग लिये।'

चौधरी- 'मांग न लेता तो क्या करता, हलवाई की दुकान पर दादा का फातेहा पढ़ना मुझे पसंद नहीं।'

स्त्री- 'यह नाक-कटाई अच्छी लगती है?'

चौधरी- 'तो मेरा क्या बस है भाई, कभी कुआं बनेगा कि नहीं? पांच साल हो गये।'

स्त्री- 'इस वक्त उसने कुछ नहीं खाया। पहली जून भी मुंह जूठा करके उठ गया था।'

चौधरी- 'तुमने समझाकर खिलाया नहीं, दाना-पानी छोड़ देने से तो रुपये न मिलेंगें।'

स्त्री- 'तुम क्यों नहीं जाकर समझा देते?'

चौधरी- 'मुझे तो इस वक्त बैरी समझ रहा होगा!'

स्त्री- 'मैं रुपये ले जाकर बच्चा को दिये आती हूं, हाथ में जब रुपये आ जाएं, तो कुआं बनवा देना।'

चौधरी- 'नहीं-नहीं, ऐसा गज़ब न करना, मैं इतना बड़ा विश्वासघात न करूंगा, चाहे घर मिट्टी ही में मिल जाए।

लेकिन स्त्री ने इन बातों की ओर ध्यान न दिया। वह लपककर भीतर गयी और थैलियों पर हाथ डालना चाहती थी कि एक चीख मारकर हट गयी। उसकी सारी देह सितार के तार की भांति कांपने लगी।

चौधरी ने घबराकर पूछा- 'क्या हुआ, क्या तुम्हें चक्कर तो नहीं आ गया?' स्त्री ने ताक की ओर भयातुर नेत्रों से देखकर कहा- 'चुड़ैल वहां खड़ी है?'

चौधरी ने ताक की ओर देखकर कहा- 'कौन चुड़ैल? मुझे तो कोई नहीं दिखता।'

स्त्री- 'मेरा तो कलेजा धक-धक कर रहा है। ऐसा मालूम हुआ, जैसे उस बुढ़िया ने मेरा हाथ पकड़ लिया है।'

चौधरी- 'यह सब भ्रम है। बुढ़िया को मरे पांच साल हो गये, अब तक यहां बैठी है?'

स्त्री- 'मैंने साफ़ देखा, वही थी। बच्चा भी कहते थे कि उन्होंने रात को थैलियों पर हाथ रखे देखा था!'

चौधरी- 'वह रात को मेरी कोठरी में कब आया?'

स्त्री- 'तुमसे कुछ रुपयों के विषय ही में कहने आया था। उसे देखते ही भागा।'

चौधरी- 'अच्छा फिर तो अंदर जाओ, मैं देख रहा हूं।'

स्त्री ने कमर पर हाथ रखकर कहा- 'न बाबा, अब मैं उस कमरे में कदम न रखूंगी।'

चौधरी- 'अच्छा, मैं जाकर देखता हूं।'

चौधरी ने कोठरी में जाकर दोनों थैलियां ताक पर से उठा लीं। किसी प्रकार की शंका न हुई। गोमती की छाया का कहीं नाम भी न था। स्त्री द्वार पर खड़ी झांक रही थी। चौधरी ने आकर गर्व से कहा- 'मुझे तो कहीं कुछ न दिखाई दिया। वहां होती, तो कहां चली जाती?'

स्त्री- 'क्या जाने, तुम्हें क्यों नहीं दिखाई दी? तुमसे उसे स्नेह था, इसी से हट गयी होगी।'

चौधरी- 'तुम्हें भ्रम था, और कुछ नहीं।'

स्त्री- 'बच्चा को बुलाकर पुछाये देती हूं।'

चौधरी- 'खड़ा तो हूं, आकर देख क्यों नहीं लेती?'

स्त्री को कुछ आश्वासन हुआ। उसने ताक के पास जाकर डरते-डरते हाथ बढ़ाया फिर ज़ोर से चिल्लाकर भागी और आंगन में आकर दम लिया।

चौधरी भी उसके साथ आंगन में गया और विस्मय से बोला - 'क्या था, क्या? व्यर्थ में भागी चली आयीं। मुझे तो कुछ न दिखाई दिया।'

स्त्री ने हांफते हुए तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा- 'चलो हटो, अब तक तो तुमने मेरी जान ही ले ली थी। न जाने तुम्हारी आंखों को क्या हो गया है। खड़ी तो है वह डायन।'

इतने में हरनाथ भी वहां आ गया। माता को आंगन में पड़े देखकर बोला- 'क्या है अम्मा, कैसा जी है?'

स्त्री- 'वह चुड़ैल आज दो बार दिखाई दी, बेटा। मैंने कहा - लाओ तुम्हें रुपये दे दूं। फिर जब

हाथ में आ जायेंगे, तो कुआं बनवा दिया जायेगा। लेकिन ज्यों ही थैलियों पर हाथ रखा, उस चुड़ैल ने मेरा हाथ पकड़ लिया। प्राण से निकल गये।'

हरनाथ ने कहा- 'किसी अच्छे ओझा को बुलाना चाहिए, जो इसे मार भगाये।'

चौधरी- 'क्या रात को तुम्हें भी दिखाई दी थी?'

हरनाथ- 'हां, मैं तुम्हारे पास एक मामले में सलाह करने आया था। ज्यों ही अंदर कदम रखा, वह चुड़ैल ताक के पास खड़ी दिखाई दी, मैं बदहवास होकर भागा।'

चौधरी- 'अच्छा, फिर तो जाओ।'

स्त्री- 'कौन अब तो मैं न जाने दूं, चाहे कोई लाख रुपये ही क्यों न दे।'

हरनाथ- 'मैं अब न जाऊंगा।'

चौधरी- 'मगर मुझे कुछ दिखाई नहीं देता। यह बात क्या है?'

हरनाथ- 'क्या जाने, आपसे डरती होगी। आज किसी ओझा को बुलाना चाहिए।'

चौधरी- 'कुछ समझ में नहीं आता, क्या माजरा है। क्या हुआ बैजू पांडे की डिग्री का?'

हरनाथ इन दिनों चौधरी से इतना जलता था कि अपनी दुकान के विषय की कोई बात उनसे न कहता था। आंगन की तरफ़ ताकता हुआ मानो हवा से बोला- 'जो होना होगा, वह होगा, मेरी जान के सिवा और कोई क्या ले लेगा? जो खा गया हूं, वह तो उगल नहीं सकता।'

चौधरी- 'कहीं उसने डिग्री जारी कर दी तो?'

हरनाथ- 'तो क्या? दुकान में चार-पांच सौ का माल है, वह नीलाम हो जायेगा।'

चौधरी- 'कारोबार तो सब चौपट हो जायेगा?'

हरनाथ- 'अब कारोबार के नाम को कहां तक रोऊं। अगर पहले से मालूम होता कि कुआं बनवाने की इतनी जल्दी है, तो यह काम छेड़ता ही क्यों, रोटी-दाल तो पहले भी मिल जाती थी। बहुत होगा, दो-चार महीने हवालात में रहना पड़ेगा। इसके सिवा और क्या हो सकता है?'

माता ने कहा- 'जो तुम्हें हवालात में ले जाये, उसका मुंह झुलसा दूं! हमारे जीते-जी तुम हवालात में जाओगे?'

हरनाथ ने दार्शनिक बनकर कहा- 'मां-बाप जन्म के साथी होते हैं, किसी के कर्म के साथी नहीं होते।'

चौधरी को पुत्र से प्रगाढ़ प्रेम था। उन्हें शंका हो गयी थी कि हरनाथ रुपये हजम करने के लिए टाल-मटोल कर रहा है। इसलिए उन्होंने आग्रह करके रुपये वसूल कर लिये थे। अब उन्हें अनुभव हुआ कि हरनाथ के प्राण सचमुच संकट में है। सोचा - अगर लड़के को हवालात हो गयी; तो कुल-मर्यादा धूल में मिल जायेगी। क्या हर्ज है, अगर गोमती के रुपये दे दूं। आखिर दुकान चलती ही है, कभी-न-कभी तो रुपये हाथ में आ ही जायेंगे।

एकाएक किसी ने बाहर से पुकारा- 'हरनाथसिंह!' हरनाथ के मुख पर हवाइयां उड़ने लगी। चौधरी ने पूछा- 'कौन है?'

'कुर्क अमीन।'

'क्या दूकान कुर्क कराने आया है?'

'हां, मालूम तो होता है।'

'कितने रुपयों की डिग्री है।'

'1200 रु. की।'

'कुर्क-अमीन कुछ लेने-देने से न टलेगा?'

'टल तो जाता पर महाजन भी तो उसके साथ होगा। उसे जो कुछ लेना है, उधर से ले चुका होगा।'

' न हो, 1200 रु. गोमती के रुपयों में से दे दो।'

'उसके रुपये कौन छुएगा। न जाने घर पर क्या आफ़त आये।'

'उसके रुपये कोई हजम थोड़ी ही किये लेता है; चलो मैं दे दूं!'

चौधरी को इस समय भय हुआ, कहीं मुझे भी वह न दिखाई दे। लेकिन उनकी शंका निर्मूल थी। उन्होंने एक थैली से 220 रु. निकाले और दूसरी थैली में रखकर हरनाम को दे दिये। संध्या तक इन 2000 रु. में एक रुपया भी न बचा।

5

बारह साल गुजर गये। न चौधरी अब इस संसार में हैं, न हरनाथ। चौधरी जब तक जिये, उन्हें कुएं की चिंता बनी रही; यहां तक कि मरते दम भी उनकी जबान पर कुएं की रट लगी हुई थी। लेकिन दुकान में सदैव रुपयों का तोड़ा रहा। चौधरी के मरते ही सारा कारोबार चौपट हो गया। हरनाथ ने आने रुपये लाभ से संतुष्ट न होकर दूने-तिगुने लाभ पर हाथ मारा– जुआ खेलना शुरु किया। साल भी न गुजरने पाया था कि दुकान बंद हो गयी। गहने-पाते, बरतन-भाड़े, सब मिट्टी में मिल गये। चौधरी की मृत्यु के ठीक साल भर बाद, हरनाथ ने भी इस हानि-लाभ के संसार से पयान किया। माता के जीवन का अब कोई सहारा न रहा। बीमार पड़ीं, पर दवा-दर्पन न हो सकी। तीन-चार महीने तक नाना प्रकार के कष्ट झेलकर वह भी चल बसीं। अब केवल बहू थी, वह भी गर्भिणी। उस बेचारी के लिए अब कोई आधार न था।

इस दशा में मज़दूरी भी न कर सकती थी। पड़ोसियों के कपड़े सी-सीकर उसने किसी भांति पांच-छः महीने काटे। तेरे लड़का होगा। सारे लक्षण बालक के से थे। यही एक जीवन का आधार था। जब कन्या हुई तो यह आधार भी जाता रहा। माता ने अपना हृदय इतना कठोर कर लिया कि नवजात शिशु को छाती भी न लगाती। पड़ोसियों के बहुत समझाने-बुझाने पर छाती से लगाया, पर उसकी छाती में दूध की एक बूंद भी न थी। उस समय अभागिनी माता के हृदय में करुणा,

वात्सल्य और मोह का एक भूकम्प-सा आ गया। अगर किसी उपाय से स्तन की अंतिम बूंद दूध बन जाती, तो वह अपने को धन्य मानती।

बालिका की वह भोली, दीन, याचनामय, सतृष्ण छवि देखकर उसका मातृ-हृदय मानो सहस्र नेत्रों से रुदन करने लगा। उसके हृदय की सारी शुभेच्छाएं, सारा आशीर्वाद, सारी विभूति, सारा अनुराग मानो उसकी आंखों से निकलकर उस बालिका को उसी भांति रंजित कर देता था जैसे इंदु का शीतल प्रकाश पुष्प को रंजित कर देता है, पर उस बालिका के भाग्य में मातृ-प्रेम के सुख न बदे थे। माता ने कुछ अपना रक्त, कुछ ऊपर का दूध पिलाकर उसे जिलाया, पर उसकी दशा दिनोंदिन जीर्ण होती जाती थी।

एक दिन लोगों ने जाकर देखा, तो वह भूमि पर पड़ी हुई थी और बालिका उसकी छाती से चिपटी उसके स्तनों को चूस रही थी। शोक और दरिद्रता से आहत शरीर में रक्त कहां, जिससे दूध बनता।

वही बालिका पड़ोसियों की दया-भिक्षा से पलकर एक दिन घास खोदती हुई उस स्थान पर जा पहुंची, जहां बुढ़िया गोमती का घर था। छप्पर कब के पंचभूतों में मिल चुके थे। केवल जहां-तहां दीवारों के चिन्ह बाकी थे। कहीं-कहीं आधी-आधी दीवारें खड़ी थीं। बालिका ने न जाने क्या सोचकर खुरपी से गड्ढा खोदना शुरू किया। दोपहर से सांझ तक वह गड्ढा खोदती रही। न खाने की सुध थी, न पीने की। न कोई शंका थी, न भय। अंधेरा हो गया, पर वह ज्यों-की-त्यों बैठी गड्ढा खोद रही थी। उस समय किसान लोग भूलकर भी उधर से न निकलते थे, पर बालिका नि:शंक बैठी भूमि से मिट्टी निकाल रही थी। जब अंधेरा हो गया तो वह चली गयी ।

दूसरे दिन वह बड़े सबेरे उठी और इतनी घास खोदी, जितनी वह कभी दिन भर में न खोदती थी। दोपहर के बाद वह अपनी खांची और खुरपी लिए फिर उसी स्थान पर पहुंची, पर वह आज अकेली न थी, उसके साथ दो बालक और भी थे। तीनों वहां सांझ तक 'कुआं-कुआं' खोदते रहे। बालिका गड्ढे के अंदर खोदती थी और दोनों बालक मिट्टी निकाल-निकालकर फेंकते थे।

तीसरे दिन दो लड़के और भी उस खेल में मिल गये। शाम तक खेल होता रहा। आज गड्ढा दो हाथ गहरा हो गया था। गांव के बालक-बालिकाओं में इस विलक्षण खेल ने अभूतपूर्व उत्साह भर दिया था।

चौथे दिन और भी कई बालक आ मिले। सलाह हुई, कौन अंदर जाय, कौन मिट्टी उठाये, कौन झौआ खींचे। गड्ढा अब चार हाथ गहरा हो गया था, पर अभी तक बालकों के सिवा और किसी को उसकी खबर न थी।

एक दिन रात को एक किसान अपनी खोयी हुई भैंस ढूंढ़ता हुआ उस खंडहर में जा निकला। अंदर मिट्टी का ऊंचा ढेर, एक बड़ा-सा गड्ढा और एक टिमटिमाता हुआ दीपक देखा, तो डरकर भागा। औरों ने भी आकर देखा, कई आदमी थे। कोई शंका न थी। समीप जाकर देखा, तो बालिका बैठी थी। एक आदमी ने पूछा- 'अरे, क्या तूने यह गड्ढा खोदा है?'

बालिका ने कहा- 'हां।'

‘गड्ढा खोदकर क्या करेगी’

‘यहां कुआं बनाऊंगी।’

‘कुआं कैसे बनायेंगी?’

‘जैसे इतना खोदा है वैसे ही इतना और खोद लूंगी। गांव के सब लड़के खेलने आते हैं।’

‘मालूम होता है, तू अपनी जान देगी और अपने साथ और लड़कों को भी मारेगी। खबरदार, जो कल से गड्ढा खोदा!’

दूसरे दिन और लड़के न आये, बालिका ही दिनभर मजूरी करती रही। लेकिन संध्या-समय वहां फिर दीपक जला और फिर वह खुरपी हाथ में लिये वहां बैठी दिखाई दी।

गांव वालों ने उसे मारा-पीटा, कोठरी में बंद किया, पर वह अवकाश पाते ही वहां जा पहुंचती।

गांव के लोग प्राय: श्रद्धालु होते हैं, बालिका के इस अलौकिक अनुराग ने आखिर उनमें भी अनुराग उत्पन्न किया। कुआं खुदने लगा।

इधर कुआं खुद रहा था उधर बालिका मिट्टी से ईंटें बनाती थी। इस खेल में सारे गांव के लड़के शरीक होते थे। उजली रातों में जब सब लोग सो जाते, तब भी वह ईंटें थापती दिखाई देती। न जाने इतनी लगन उसमें कहां से आ गयी थी। सात वर्ष की उम्र क्या होती है? लेकिन सात वर्ष की वह लड़की बुद्धि और बातचीत में अपनी तिगुनी उम्र वालों के कान काटती थी।

आखिर एक दिन वह भी आया कि कुंआ बंध गया और उसकी पक्की जगत तैयार हो गयी। उस दिन बालिका जगत पर सोयी। आज उसके हर्ष की सीमा न थी। गाती थी, चहकती थी।

प्रात:काल उस जगत पर केवल उसकी लाश मिली। उस दिन से लोगों ने कहना शुरू किया, यह वही बुढ़िया गोमती थी। इस कुएं का नाम ‘पिसनहारी का कुआं’ पड़ा।

कप्तान साहब

जगतसिंह को स्कूल जाना कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था। यह सैलानी, आवारा, घुमक्कड़ युवक था। कभी अमरूद के बाग़ की ओर निकल जाता और अमरूदों के साथ माली की गालियां बड़े शौक़ से खाता। कभी दरिया की सैर करता और मल्लाहों की डोंगियों में बैठकर उस पार के देहातों में निकल जाता। गालियां खाने में उसे मजा आता था। गालियां खाने का कोई अवसर वह हाथ से न जाने देता। सवार के घोड़े के पीछे ताली बजाना, एक्कों को पीछे से पकड़कर अपनी ओर खींचना, बूढ़ों की चाल की नकल करना, उसके मनोरंजन के विषय थे। आलसी काम तो नहीं करता, पर दुर्व्यसनों का दास होता है, और दुर्व्यसन धन के बिना पूरे नहीं होते। जगतसिंह को जब अवसर मिलता, घर से रुपये उड़ा ले जाता। नकद न मिले, तो बर्तन और कपड़े उठा ले जाने में भी उसे संकोच न होता। घर में शीशियां और बोतलें थीं, वह सब उसने एक-एक करके गुदड़ी-बाजार पहुंचा दी। पुराने दिनों की कितनी चीज़ें घर में पड़ी थीं। उसके मारे एक भी न बची। इस कला में ऐसा दक्ष और निपुण था कि उसकी चतुराई और पटुता पर आश्चर्य होता था। एक बार वह बाहर-ही-बाहर, केवल कारनिसों के सहारे, अपने दो-मंजिला मकान की छत पर चढ़ गया और ऊपर ही से पीतल की एक बड़ी थाली लेकर उतर आया। घरवालों को आहट तक न मिली।

उसके पिता ठाकुर भक्तसिंह अपने कस्बे के डाकखाने में मुंशी थे। अफ़सरों ने उन्हें शहर का डाकखाना बड़ी दौड़-धूप करने पर दिया था, किंतु भक्तसिंह जिन इरादों से यहां आये थे, उनमें से एक भी पूरा न हुआ। उलटे हानि यह हुई कि देहातों में जो भाजी-साग, उपले-ईंधन मुफ्त मिल जाते थे वे सब यहां बंद हो गए। यहां सबसे पुराना घरांव था। न किसी को दबा सकते थे; न सता सकते थे। इस दुरवस्था में जगतसिंह की हथ-लपाकियां बहुत अखरती। उन्होंने कितनी ही बार उसे बड़ी निर्दयता से पीटा। जगतसिंह भीमकाय होने पर भी चुपके से मार खा लिया करता था। अगर वह अपने पिता के हाथ पकड़ लेता, तो वह हिल भी न सकते, पर जगतसिंह इतना सीनाजोर न था। हां, मार-पीट, घुड़की-धमकी किसी का भी उस पर असर न होता था। जगतसिंह ज्यों ही घर में कदम रखता; चारों ओर से कांव-कांव मच जाती, मां दुर-दुर करके दौड़ती, बहनें गालियां देने लगती, मानों घर में कोई सांड घुस आया हो। बेचारा उलटे पांव भागता। कभी-कभी, दो-दो, तीन-तीन दिन भूखा रह जाता। घरवाले उसकी सूरत से जलते थे। इन तिरस्कारों ने उसे निर्लज्ज बना दिया था। कष्टों के ज्ञान से निर्द्वन्द्व-सा हो गया था। जहां नींद आ जाती, वहीं पड़ा रहता, जो कुछ मिल जाता, वही खा लेता।

ज्यों-ज्यों घरवालों को उसकी चोर-कला के गुप्त साधनों का ज्ञान होता जाता था, वे उससे चौंकन्ने होते जाते थे। यहां तक कि एक बार पूरे महीने-भर तक उसकी दाल न गली। चरसवाले के कई रुपये ऊपर चढ़ गए। गांजेवाले ने धुआंधार तकाजे करने शुरू किए। हलवाई कड़वी बातें सुनाने लगा। बेचारे जगत को निकालना मुश्किल हो गया। रात-दिन ताक-झांक में रहता; पर

घात न मिलती थी। आखिर एक दिन बिल्ली के भागों छींका टूटा। भक्तसिंह दोपहर को डाकखाने से चले, तो एक बीमा-रजिस्ट्री जेब में डाल ली। कौन जाने, कोई हरकारा या डाकिया शरारत कर जाय; किन्तु घर आये तो लिफ़ाफे को अचकन की जेब से निकालने की सुधि न रही। जगतसिंह तो ताक लगाये हुए था ही, पैसे के लोभ से जेब टटोली, तो लिफ़ाफ़ा मिल गया। उस पर कई आने के टिकट लगे थे। वह कई बार टिकट चुराकर आधे दामों पर बेच चुका था। झट लिफ़ाफ़ा उड़ा दिया। यदि उसे मालूम होता कि उसमें नोट है, तो कदाचित् वह न छूता; लेकिन जब उसने लिफ़ाफ़ा फाड़ डाला और उसमें से नोट निकल पड़े तो वह बड़े संकट में पड़ गया। वह फटा हुआ लिफ़ाफ़ा गला फाड़-फाड़कर उसके दुष्कृत्य को धिक्कारने लगा। उसकी दशा उस शिकारी की-सी हो गई, जो चिड़ियों का शिकार करने जाय और अनजाने में किसी आदमी पर निशाना मार दें। उसके मन में पश्चाताप था, लज्जा थी, दु:ख था, पर उसे भूल का दंड सहने की शक्ति न थी। उसने नोट लिफ़ाफ़े में रख दिए और बाहर चला गया।

गरमी के दिन थे। दोपहर को सारा घर सो रहा था, पर जगत की आंखों में नींद न थी। आज उसकी बुरी तरह कुंदी होगी - इसमें संदेह न था। उसका घर पर रहना ठीक नहीं, दस-पांच दिन के लिए उसे कहीं खिसक जाना चाहिए। तब तक लोगों का क्रोध शांत हो जाता। लेकिन कहीं दूर गये बिना काम न चलेगा। बस्ती में वह कई दिन तक अज्ञातवास नहीं कर सकता। कोई-न-कोई जरूर ही उसका पता दे देगा, और वह पकड़ लिया जायेगा। दूर जाने के लिए कुछ-न-कुछ खर्च तो पास होना चाहिए। क्यों न वह लिफ़ाफ़े में से एक नोट निकाल ले? यह तो मालूम ही हो जायेगा कि उसी ने लिफ़ाफ़ा फाड़ा है, फिर एक नोट निकाल लेने में क्या हानि है? दादा के पास रुपये तो हैं ही, झक मारकर दे देंगे। यह सोचकर उसने दस रुपये का एक नोट उड़ा लिया, मगर उसी वक्त उसके मन में एक नई कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। अगर ये सब रुपये लेकर किसी दूसरे शहर में कोई दुकान खोल लें, तो बड़ा मजा हो। फिर एक-एक पैसे के लिए उसे क्यों किसी की चोरी करनी पड़े? कुछ दिनों में बहुत-सा रुपया जमा कर के घर आएगा, तो लोग कितने चकित हो जायेंगे!

उसने लिफ़ाफ़े को फिर निकाला। उसमें केवल 200 रु. के नोट थे। दो सौ में दूध की दूकान खूब चल सकती है। आखिर मुरारी की दूकान में दो-चार कढ़ाव और दो-चार पीतल के थालों के सिवा और क्या है? लेकिन कितने ठाट से रहता है! रुपयों की चरस उड़ा देता है। एक-एक दांव पर दस-दस रुपये रख देता है, नफा न होता, तो वह ठाट कहां से निभाता? इस आनंद-कल्पना में वह इतना मग्न हुआ कि उसका मन उसके काबू से बाहर हो गया, जैसे प्रवाह में किसी के पांव उखड़ जाये और वह लहरों में बह जाय।

उस दिन शाम को वह बम्बई चल दिया। दूसरे ही दिन मुंशी भक्तसिंह पर ग़बन का मुकदमा दायर हो गया।

2

बम्बई के किले के मैदान में बैंड बज रहा था और राजपूत रेजीमेंट के सजीले सुंदर जवान कवायद कर रहे थे। जिस प्रकार हवा बादलों को नए-नए रूप में बनाती और बिगाड़ती है, उसी

भांति सेना का नायक सैनिकों को नए-नए रूप में बना-बिगाड़ रहा था।

जब कवायद खतम हो गई, तो एक छरहरे डौल का युवक नायक के सामने आकर खड़ा हो गया। नायक ने पूछा- 'क्या नाम है?' युवक ने फौजी सलाम करके कहा- 'जगतसिंह।'

'क्या चाहते हो?'

'फौज में भरती कर लीजिए।'

'मरने से तो नहीं डरते?'

'बिलकुल नहीं, राजपूत हूं।'

'बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी।'

'इसका भी डर नहीं।'

'अंदर जाना पड़ेगा।'

'खुशी से जाऊंगा।'

कप्तान ने देखा, बला का हाज़िर-जवाब, मनचला, हिम्मत का धनी जवान है। तुरंत फ़ौज में भरती कर लिया। तीसरे दिन रेजीमेंट अदन को रवाना हुआ। मगर ज्यों-त्यों जहाज़ आगे चलता था, जगत का दिल पीछे रहा जाता था। जब तक ज़मीन का किनारा नज़र आता रहा, वह जहाज़ के डेक पर खड़ा अनुरक्त नेत्रों से उसे देखता रहा। जब वह भूमि-तट जल में विलीन हो गया, तो उसने एक ठंडी सांस ली और मुंह ढांपकर रोने लगा। आज जीवन में पहली बार उसे प्रियजनों की याद आयी। वह छोटा-सा अपना कस्बा, वह गांजे की दुकान, वह सैर-सपाटे, वह सुहृद-मित्रों के जमघट आंखों में फिरने लगे। कौन जाने, फिर कभी उनसे भेंट होगी या नहीं। एक बार वह इतना बेचैन हुआ कि जी में आया, पानी में कूद पड़े।

3

जगतसिंह को अदन में रहते हुए तीन महीने गुजर गए। भांति-भांति की नवीनताओं ने कई दिनों तक उसे मुग्ध किए रखा, लेकिन पुराने संस्कार फिर जागृत होने लगे। अब कभी-कभी उसे स्नेहमयी माता की याद आने लगी, जो पिता के क्रोध, बहनों के धिक्कार और स्वजनों के तिरस्कार में भी उसकी रक्षा करती थी। उसे वह दिन याद आया, जब वह एक बार बीमार पड़ा था। उसके बचने की कोई आशा न थी; पर न तो पिता को उसकी कुछ चिंता थी, न बहनों को। केवल माता थीं, जो रात-की-रात उसके सिरहाने बैठी अपनी मधुर स्नेहमयी बातों से उसकी पीड़ा शांत करती रही थी। उन दिनों कितनी बार उसने उस देवी को नीरव रात्रि में रोते देखा था। वह स्वयं रोगों से जीर्ण हो रही थी, लेकिन उसकी सेवा-शुश्रूसा में वह अपनी व्यथा को ऐसी भूल गई थी, मानों उसे कोई कष्ट ही नहीं। क्या उसे माता के दर्शन फिर होंगे? वह इसी क्षोभ और नैराश्य में समुद्र-तट पर चला जाता और घंटों अनंत जल-प्रवाह को देखा करता। कई दिनों से उसे घर पर एक पत्र भेजने की इच्छा हो रही थी, किंतु लज्जा और ग्लानि के कारण वह टालता जाता था।

आखिर, एक दिन उससे न रहा गया। उसने पत्र लिखा और अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगी। पत्र आदि से अंत तक भक्ति से भरा हुआ था। अंत में उसने इन शब्दों में अपनी माता को आश्वासन दिया था - माताजी, मैंने बड़े-बड़े उत्पात किए हैं, आप लोग मुझसे तंग आ गई थीं, मैं उन सारी भूलों के लिए सच्चे हृदय से लज्जित हूं और आपको विश्वास दिलाता हूं कि जीता रहा, तो कुछ-न-कुछ करके दिखाऊंगा। तब कदाचित् आपको मुझे अपना पुत्र कहने में संकोच न होगा। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सकूं।

यह पत्र लिखकर उसने डाकखाने में छोड़ा और उसी दिन से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा, किंतु एक महीना गुजर गया और और कोई जवाब न आया। उसकी जी घबड़ाने लगा। जवाब क्यों नहीं आता-कहीं माता जी बीमार तो नहीं है? शायद दादा ने क्रोधवश जवाब न लिखा होगा। कोई और आपत्ति तो नहीं आ पड़ी? कैम्प में एक वृक्ष के नीचे कुछ सिपाहियों ने शालिग्राम की एक मूर्ति रख छोड़ी थी। कुछ श्रद्धालु सैनिक रोज़ उस प्रतिमा पर जल चढ़ाया करते थे। जगतसिंह उनकी हंसी उड़ाया करता पर आज वह विक्षिप्तों की भांति प्रतिमा के सम्मुख जाकर बड़ी देर तक मस्तक झुकाए बैठा रहा। वह इसी ध्यानावस्था में बैठा था कि किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा, वह दफ्तर का चपरासी था और उसके नाम की चिट्ठी लेकर आया था। जगतसिंह ने पत्र हाथ में लिया, तो उसकी सारी देह कांप उठी। ईश्वर की स्तुति करके उसने लिफ़ाफ़ा खोला और पत्र पढ़ा। लिखा था - 'तुम्हारे दादा को ग़बन के अभियोग में पांच वर्ष की सजा हो गई है। तुम्हारी माता इस शोक में मरणासन्न हैं। छुट्टी मिले, तो घर चले आओ।

जगतसिंह ने उसी वक्त कप्तान के पास जाकर कहा- 'हुजूर, मेरी मां बीमार है, मुझे छुट्टी दे दीजिए।'

कप्तान ने कठोर आंखों से देखकर कहा- 'अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।'

'तो मेरा इस्तीफा ले लीजिए।'

'अभी इस्तीफा भी नहीं लिया जा सकता।'

'मैं अब यहां एक क्षण भी नहीं रह सकता।'

'रहना पड़ेगा। तुम लोगों को बहुत जल्द लड़ाई पर जाना पड़ेगा।'

'लड़ाई छिड़ गई है! आह, तब मैं घर नहीं जाऊंगा । हम लोग कब तक यहां से जायेंगे?'

'बहुत जल्द, दो ही चार दिनों में'

4

चार वर्ष बीत गए। कैप्टन जगतसिंह का-सा योद्धा उस रेजीमेंट में नहीं है। कठिन अवस्थाओं में उसका साहस और भी उत्तेजित हो जाता है। जिस मुहिम में सबकी हिम्मतें जवाब दे जाती हैं, उसे हल करना उसी का काम है। हल्ले और धावे में वह सदैव सबसे आगे रहता है, उसकी त्योरियों पर कभी मैल नहीं आता; इसके साथ ही वह इतना विनम्र, इतना गम्भीर, इतना प्रसन्नचित्त है कि सारे अफ़सर और मातहत उसकी बड़ाई करते हैं। उसका पुनर्जीवन-सा हो गया। उस पर अफसरों

का इतना विश्वास है कि अब वे प्रत्येक विषय में उससे परामर्श करते हैं। जिससे पूछिए, वही जगतसिंह ही विरुदावली सुना देगा- कैसे उसने जर्मनों की मैगज़ीन में आग लगायी, कैसे अपने कप्तान को मशीनगनों की मार से निकाला, कैसे अपने मातहत सिपाही को कंधे पर लेकर निकल आया। ऐसा जाना पड़ता है, उसे अपने प्राणों का मोह ही नहीं, मानों वह कल को खोजता फिरता हो।

लेकिन नित्य रात्रि के समय, जब जगतसिंह को अवकाश मिलता है, वह अपनी छीलदारी में अकेले बैठकर घरवालों को याद कर लिया करता है, दो-चार आंसू की बूंदें अवश्य गिरा देता है। वह प्रतिमास अपने वेतन का बड़ा भाग घर भेज देता है, और ऐसा कोई सप्ताह नहीं जाता जब कि वह माता को पत्र न लिखता हो। सबसे बड़ी चिंता उसे अपने पिता की है, जो आज उसी के दुष्कर्मों के कारण कारावास की यातना झेल रहे हैं। हाय! वह कौन दिन होगा, जब कि वह उनके चरणों पर सिर रखकर अपना अपराध क्षमा कराएगा, और वह उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देंगे?

5

सवा चार वर्ष बीत गये। संध्या का समय है। नैनी जेल के द्वार पर भीड़ लगी हुई है। कितने ही कैदियों की मियाद पूरी हो गई है। उन्हें लिवा जाने के लिए उनके घरवाले आये हुए है, किंतु बूढ़ा भक्तसिंह अपने अंधेरी कोठरी में सिर झुकाए उदास बैठा हुआ है। उसकी कमर झुककर कमान हो गई। देह अस्थि-पंजर मात्र रह गई है। ऐसा जान पड़ता है, किसी चतुर शिल्पी ने एक अकाल-पीड़ित मनुष्य की मूर्ति बनाकर रख दी है। उसकी भी मियाद पूरी हो गई है। लेकिन उसके घर से कोई नहीं आया। कौन आये? आने वाला था ही कौन?

एक बूढ़े किंतु हृष्ट-पुष्ट कैदी ने आकर उसका कंधा हिलाया और बोला- 'कहो भगत, कोई घर से आया?'

भक्तसिंह ने कंपित कंठ-स्वर से कहा- 'घर पर है ही कौन?'

'घर तो चलोगे ही?'

'मेरा घर कहां है?'

'तो क्या यही पड़े रहोगे?'

'अगर ये लोग निकाल न देंगे, तो यही पड़ा रहूंगा।'

आज चार साल के बाद भक्तसिंह को अपने प्रताड़ित, निर्वासित पुत्र की याद आ रही थी। जिसके कारण जीवन का सर्वनाश हो गया, आबरु मिट गई, घर बरबाद हो गया, उसकी स्मृति भी उन्हें असह्य थी, किंतु आज नैराश्य और दु:ख के अथाह सागर में डूबते हुए उन्होंने उसी तिनके का सहारा लिया। न-जाने उस बेचारे की क्या दशा हुई? लाख बुरा है, तो भी अपना लड़का है। खानदान की निशानी तो है। मरूंगा तो चार आंसू तो बहायेगा, दो चिल्लू पानी तो देगा। हाय मैंने उसके साथ कभी प्रेम का व्यवहार नहीं किया! जरा भी शरारत करता, तो यमदूत की भांति

उसकी गर्दन पर सवार हो जाता। एक बार रसोई में बिना पैर धोए चले जाने के दंड में मैंनें उसे उलटा लटका दिया था। कितनी बार केवल जोर से बोलने पर मैंने उसे तमाचे लगाए थे। पुत्र-का-सा- रत्न पाकर मैंने उसका आदर न किया। उसी का दंड है। जहां प्रेम का बंधन शिथिल हो, वहां परिवार की रक्षा कैसे हो सकती है?

6

सबेरा हुआ। आशा का सूर्य निकला। आज उसकी रश्मियां कितनी कोमल और मधुर थी, वायु कितनी सुखद, आकाश कितना मनोहर, वृक्ष कितने हरे-भरे, पक्षियों का कलरव कितना मीठा है। सारी प्रकृति आशा के रंग में रंगी हुई थी, पर भक्तसिंह के लिए चारों ओर घोर अंधकार था।

जेल का अफसर आया। कैदी एक पंक्ति में खड़े हुए। अफसर एक। एक का नाम लेकर रिहाई का परवाना देने लगा। कैदियों के चेहरे आशा से प्रफुल्लित थे। जिसका नाम आता, वह खुश-खुश अफसर के पास जाता, परवाना लेता, झुककर सलाम करता और तब अपने विपत्तिकाल के संगियों से गले मिलकर बाहर निकल जाता। उसके घरवाले दौड़कर उससे लिपट जाते। कोई पैसे लुटा रहा था, कहीं मिठाइयां बांटी जा रही थी, कहीं जेल के कर्मचारियों को इनाम दिया जा रहा था; आज नरक के पुतले विनम्रता के देवता बने हुए थे।

अंत में भक्तसिंह का नाम आया। वह सिर झुकाए, आहिस्ता-आहिस्ता जेलर के पास गया और उदासीन भाव से परवाना लेकर जेल के द्वार की ओर चला। मानो सामने कोई समुद्र लहरें मार रहा हो। द्वार से बाहर निकलकर वह ज़मीन पर बैठ गए। कहां जाए?

सहसा उन्होंने एक सैनिक अफ़सर को घोड़े पर सवार, जेल की ओर आते देखा। उसकी देह पर खाकी वर्दी थी, सिर पर कारचोबी साफा। अजीब शान से घोड़े पर बैठा हुआ था। उसके पीछे-पीछे एक फिटन आ रही थी। जेल के सिपाहियों ने अफ़सर को देखते ही बंदूकें संभाली और लाइन में खड़े होकर सलाम किया।

भक्तसिंह ने मन में कहा– 'एक भाग्यवान वह है, जिसके लिए फिटन आ रही है, और एक अभागा मैं हूं, जिसका कहीं ठिकाना नहीं।'

फौजी अफ़सर ने इधर-उधर देखा और घोड़े से उतरकर सीधे भक्तसिंह के सामने आकर खड़ा हो गया।

भक्तसिंह ने उसे ध्यान से देखा और तब चौंककर उठ खड़े हुए और बोले- 'अरे! जगतसिंह।'

जगतसिंह रोता हुआ उनके पैरों पर गिर पड़ा।

सुजान भगत

सीधे-सादे किसान धन हाथ आते ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं। दिव्य समाज की भांति वे पहले अपने भोग-विलास की ओर नहीं दौड़ते। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। मेहनत तो गांव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चन्द्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छींट आता तो कुछ- न-कुछ पैदा हो जाता था। तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गयी। उधर गुड़ का भाव भी तेज था। कोई दो-ढाई हजार हाथ में आ गए। बस, चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु-संतों का आदर-सत्कार होने लगा, द्वार पर धूनी जलने लगी, कानूनगो इलाके में आते, तो सुजान महतो के चौपाल में ठहरते। हल्के के हेड कॉन्स्टेबल, थानेदार, शिक्षा-विभाग के अफसर, एक-न-एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते। धन्य भाग! उसके द्वार पर अब इतने बड़े-बड़े हाकिम आकर ठहरते हैं। जिन हाकिमों के सामने उसका मुंह न खुलता था, उन्हीं की अब 'महतो-महतो' करते जबान सूखती थी। कभी-कभी भजन-भाव हो जाता।

एक महात्मा ने डौल अच्छा देखा तो गांव में आसन जमा दिया। गांजे और चरस की बहार उड़ने लगी। एक ढोलक आयी, मंजीरे मंगवाये गए, सत्संग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जुलूस था। घर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कंठ तले एक बूंद भी जाने की कसम थी। कभी हाकिम लोग चखते, कभी महात्मा लोग। किसान को दूध-घी से क्या मतलब, उसे रोटी और साग चाहिए। सुजान की नम्रता का अब पारावार न था। सबके सामने सिर झुकाए रहता, कहीं लोग यह न कहने लगें कि धन पाकर इसे घमंड हो गया है।

गांव में कुल तीन कुएं थे, बहुत से खेतों में पानी न पहुंचता था, खेती मारी जाती थी। सुजान ने एक पक्का कुआं बनवा दिया। कुएं का विवाह हुआ, यज्ञ हुआ, ब्रह्मभोज हुआ। जिस दिन पहली बार पुर चला, सुजान को मानो चारों पदार्थ मिल गए। जो काम गांव में किसी ने न किया था, वह बाप-दादा के पुण्य-प्रताप से सुजान ने कर दिखाया।

एक दिन गांव में गया के यात्री आकर ठहरे। सुजान ही के द्वार पर उनका भोजन बना। सुजान के मन में भी गया करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अच्छा अवसर देखकर वह भी चलने को तैयार हो गया।

उसकी स्त्री बुलाकी ने कहा - 'अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।'

सुजान ने गंभीर भाव से कहा - 'अगले साल क्या होगा, कौन जानता है। धर्म के काम में मीन-मेख निकालना अच्छा नहीं हैं। जिंदगानी का क्या भरोसा?'

बुलाकी-'हाथ खाली हो जायेगा।'

सुजान-'भगवान् की इच्छा होगी, तो फिर रुपये हो जायेंगे। उनके यहां किस बात की कमी है।'

बुलाकी इसका क्या जवाब देती? सत्कार्य में बाधा डालकर अपनी मुक्ति क्यों बिगाड़ती? प्रात:काल स्त्री और पुरुष गया करने चले। वहां से लौटे, तो यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरी। सारी बिरादरी निमंत्रित हुई, ग्यारह गांवों में सुपारी बंटी। इस धूमधाम से कार्य हुआ कि चारों ओर वाह-वाह मच गयी। सब यही कहते थे कि भगवान धन दे, तो दिल भी ऐसा दे। घमंड तो छू नहीं गया, अपने हाथ से पत्तल उठाता फिरता था, कुल का नाम जगा दिया। बेटा हो, तो ऐसा हो। बाप मरा, तो घर में भूनी-भांग भी नहीं थी। अब लक्ष्मी घुटने तोड़कर आ बैठी है।

एक द्वेषी ने कहा-'कहीं गड़ा हुआ धन पा गया है। इस पर चारों ओर से उस पर बौछारें पड़ने लगीं-हां, तुम्हारे बाप-दादा जो खजाना छोड़ गये थे, वही उसके हाथ लग गया है। अरे भैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी तो छाती फाड़ कर काम करते हो, क्यों ऐसी ऊख नहीं लगती? क्यों ऐसी फसल नहीं होती? भगवान आदमी का दिल देखते हैं। जो खर्च करता है, उसी को देते हैं।'

सुजान महतो सुजान भगत हो गये। भगतों के आचार-विचार कुछ और होते हैं। वह बिना स्नान किए कुछ नहीं खाता। गंगाजी अगर घर से दूर हों और वह रोज स्नान करके दोपहर तक घर न लौट सकता हो, तो पर्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। भजन-भाव उसके घर में अवश्य होना चाहिए। पूजा-अर्चना उसके लिए अनिवार्य है। खान-पान में भी उसे बहुत विचार रखना पड़ता है। सबसे बड़ी बात यह है कि झूठ का त्याग करना पड़ता है। भगत झूठ नहीं बोल सकता। साधारण मनुष्य को अगर झूठ का दंड कम मिले, तो भगत को एक लाख से कम नहीं मिल सकता। अज्ञान की अवस्था में कितने ही अपराध क्षम्य हो जाते हैं। ज्ञानी के लिए नहीं है, प्रायश्चित नहीं है, यदि है तो बहुत ही कठिन। सुजान को भी अब भगतों की मर्यादा को निभाना पड़ा।

अब तक उसका जीवन मजूर का जीवन था। उसका कोई आदर्श, कोई मर्यादा उसे सामने न थी। अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहां का मार्ग कांटों से भरा हुआ है। स्वार्थ-सेवा ही पहले उसके जीवन का लक्ष्य था; इसी कांटे से वह परिस्थितियों को तौलता था। वह अब उन्हें औचित्य के कांटों पर तौलने लगा। यों कहो कि जड़-जगत से निकलकर उसने चेतना जगत में प्रवेश किया। उसने कुछ लेन-देन करना शुरू कर दिया था पर अब उसे ब्याज लेते हुए आत्मग्लानि-सी होती थी। यहां तक कि गउओं को दुहाते समय उसे बछड़ों का ध्यान बना रहता था - कहीं बछड़ा भूखा न रह जाये, नहीं तो उसका रोयां दुखी होगा। वह गांव का मुखिया था, कितने ही मुकदमों में उसने झूठी शहादतें बनवायी थीं, कितनों से डांड़ लेकर मामले को रफा-दफा कर दिया था। अब इन व्यापारों से उसे घृणा होती थी। झूठ और प्रपंच से कोसों दूर भागता था। पहले उसकी यह चेष्टा होती थी कि मजूरों से जितना काम लिया जा सके, लो और मजूरी जितनी कम दी जा सके, दो; पर अब उसे मजूर के काम की कम, मजूरी की अधिक चिंता रहती थी - कहीं बेचारे मजूर का रोयां न दुखी हो जाये। उसके दोनों जवान बेटे बात-बात में उस पर फब्तियां कसते, यहां तक कि बुलाकी भी अब उसे कोरा भगत समझने लगी थी, जिसे घर के भले-बुरे से कोई प्रयोजन न था। चेतन-जगत में आकर सुजान भगत कोरे भगत रह गए।

सुजान के हाथों से धीरे-धीरे अधिकार छीने जाने लगे। किस खेत में क्या बोना है, किसको

क्या देना है, किसको क्या लेना है, किस भाव क्या चीज बिकी, ऐसी-ऐसी महत्त्वपूर्ण बातों में भी भगत जी की सलाह न ली जाती थी। भगत के पास कोई जाने ही न पाता। दोनों लड़के या स्वयं बुलाकी दूर ही से मामला तय कर लिया करती। गांव भर में सुजान का मान-सम्मान बढ़ता था, अपने घर में घटता था। लड़के अब उसका सत्कार बहुत करते। हाथ से चारपाई उठाते देख, लपककर खुद उठा लाते, चिलम न भरने देते, यहां तक कि उसकी धोती छांटने के लिए भी आग्रह करते थे। मगर अधिकार उसके हाथ में न था। वह अब घर का स्वामी नहीं, मंदिर का देवता था।

एक दिन बुलाकी ओखली में दाल छांट रही थी। एक भिखमंगा द्वार पर आकर चिल्लाने लगा। बुलाकी ने सोचा, दाल छांट लूं, तो उसे कुछ दे दूं। इतने में बड़ा लड़का भोला आकर बोला - 'अम्मा, एक महात्मा द्वार पर खड़े गला फाड़ रहे हैं? कुछ दे दो, नहीं तो उनका रोयां दुखी हो जायेगा।'

बुलाकी ने उपेक्षा के भाव से कहा-'भगत के पांव में क्या मेहंदी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं देते? क्या मेरे चार हाथ है? किस-किसका रोयां सुखी करूं? दिन भर तो तांता लगा रहता है।'

भोला-'चौपट करने पर लगे हुए हैं, और क्या? अभी महंगू बेंग देने आया था। हिसाब से 7 मन हुए। तौला तो पौने सात मन ही निकले। मैंने कहा दस सेर और ला, तो आप बैठे-बैठे कहत हैं, अब इतनी दूर कहां जायेगा। भरपाई लिख दो, नहीं तो उसका रोयां दुखी होगा। मैंने भरपाई नहीं लिखी। दस सेर बाकी लिख दी।'

बुलाकी- 'बहुत अच्छा किया तुमने, बकने दिया करो। दस-पांच दफे मुंह की खा जाएंगे, तो आप ही बोलना छोड़ देंगे।'

भोला-'दिन भर एक न एक खुचड़ निकालते रहते हैं। सौ दफे कह दिया कि तुम घर-गृहस्थी के मामले में न बोला करो, पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता।'

बुलाकी-'मैं जानती कि इनका यह हाल होगा, तो गुरुमंत्र न लेने देती।'

भोला-'भगत क्या हुए कि दीन-दुनिया दोनों से गये। सारा दिन पूजा-पाठ में ही उड़ जाता है। अभी ऐसे बूढ़े नहीं हो गए कि कोई काम ही न कर सकें।'

बुलाकी ने आपत्ति की- 'भोला, यह तुम्हारा कुन्याय है। फावड़ा, कुदाल अब उनसे नहीं हो सकता, लेकिन कुछ न कुछ तो करते ही रहते हैं। बैलों को सानी-पानी देते हैं, गाय दुहाते हैं और भी जो कुछ हो सकता है, करते हैं।'

भिक्षुक अभी तक खड़ा चिल्ला रहा था। सुजान ने जब घर में से किसी को कुछ लाते न देखा, तो उठकर अन्दर गया और कठोर स्वर से बोला - 'तुम लोगों को कुछ सुनाई नहीं देता कि द्वार पर कौन घंटे भर से खड़ा भीख मांग रहा है। अपना काम तो दिन भर करना ही है, एक क्षण भगवान का काम भी तो किया करो।'

बुलाकी- 'तुम तो भगवान का काम करने को बैठे ही हो, क्या घर भर भगवान ही का काम करेगा?'

सुजान-'कहां आटा रखा है, लाओ, मैं ही निकालकर दे आऊं। तुम रानी बनकर बैठो।'

बुलाकी- 'आटा मैंने मर-मर कर पीसा है, अनाज दे दो। ऐसे मुड़चिरों के लिए पहर रात से उठकर चक्की नहीं चलाती हूं।'

सुजान भंडार घर में गये और एक छोटी-सी छबड़ी को जौ से भरे हुए निकले। जौ सेर भर से कम न था। सुजान ने जान-बूझकर, केवल बुलाकी और भोला को चिढ़ाने के लिए, भिक्षा परम्परा का उल्लंघन किया था। तिस पर भी यह दिखाने के लिए कि छबड़ी में बहुत ज्यादा जौ नहीं है, वह उसे चुटकी से पकड़े हुए थे। चुटकी इतना बोझ न संभाल सकती थी। हाथ कांप रहा था। एक क्षण विलम्ब होने से छबड़ी के हाथ से छूटकर गिर पड़ने की संभावना थी। इसलिए वह जल्दी से बाहर निकल जाना चाहते थे। सहसा भोला ने छबड़ी उनके हाथ से छीन ली और त्यौरियां बदलकर बोला-'सेंत का माल नहीं है, जो लुटाने चले हैं। छाती फाड़-फाड़ कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।'

सुजान ने खिसियाकर कहा - 'मैं भी तो बैठा नहीं रहता।'

भोला- 'भीख, भीख की ही तरह दी जाती है, लुटाई नहीं जाती। हम तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि पति-पानी बना रहे और तुम्हें लुटाने की सूझी है। तुम्हें क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है।'

सुजान ने इसका कोई जवाब न दिया। बाहर आकर भिखारी से कह दिया- 'बाबा, इस समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है', और पेड़ के नीचे बैठकर विचारों में मग्न हो गया। अपने ही घर में उसका यह अनादर! अभी वह अपाहिज नहीं है, हाथ-पांव थके नहीं; घर का कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता है उस पर यह अनादर! उसी ने घर बनाया, यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है, पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और घर वाले जो रूखा-सूखा दे दें, वह खाकर पेट भर लिया करे। ऐसे जीवन को धिक्कार है। सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।

संध्या हो गई थी। भोला का छोटा भाई शंकर नारियल भर कर लाया। सुजान ने नारियल दीवार से टिकाकर रख दिया। धीरे-धीरे तम्बाकू जल गया। जरा देर में भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। सुजान पेड़ के नीचे से न उठा।

कुछ देर और गुजरी। भोजन तैयार हुआ। भोला बुलाने आया। सुजान ने कहा - 'भूख नहीं है।' बहुत मनावन करने पर भी न उठा। तब बुलाकी ने आकर कहा - 'खाना खाने क्यों नहीं चलते? जी तो अच्छा है?'

सुजान को सबसे अधिक क्रोध बुलाकी पर ही था। यह भी लड़कों के साथ है। यह बैठी देखती रही और भोला ने मेरे हाथ से अनाज छीन लिया। इसके मुंह से इतना भी न निकला कि ले जाते

हैं, तो ले जाने दो। लड़कों को न मालूम हो कि मैंने कितने श्रम से यह गृहस्थी जोड़ी है, पर यह तो जानती है दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा। भादों की अंधेरी रात में मड़ैया लगाकर जुआर की रखवाली करता था। जेठ-बैसाख की दोपहरी में भी दम न लेता था और अब मेरा घर पर इतना भी अधिकार नहीं है कि भीख तक दे सकूं। माना कि भीख इतनी नहीं दी जाती, लेकिन इनको तो चुप रहना चाहिए था; चाहे मैं घर में आग ही क्यों न लगा देता। कानून से भी तो मेरा कुछ होता है, मैं अपना हिस्सा नहीं खाता, दूसरों को खिला देता हूं, इसमें किसी के बाप का क्या साझा? अब इस वक्त मनाने आयी है। इसे मैंने फूल की छड़ी से भी नहीं छुआ, नहीं तो गांव में ऐसी कौन औरत है, जिसने खसम की लातें न खायी हों, कभी कड़ी निगाह से देखा तक नहीं। रुपये-पैसे, लेना-देना, सब इसी के हाथ में दे रखा था। अब रुपये जमा करा लिए हैं, तो मुझी से घमंड करती हैं। अब इसे बेटे प्यारे हैं, मैं निखट्टू, लुटाऊं, घर-फूंकू घोंघा हूं। मेरी इसे क्या परवाह? तब लड़के न थे, जब बीमार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर वैद्य के घर ले गया था। आज इसके बेटे हैं और यह उनकी मां है। मैं तो बाहर का आदमी हूं। मुझसे घर में मतलब ही क्या। बोला- 'मैं अब खा-पीकर क्या करूंगा, हल जोतने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा। मुझे खिलाकर दाने को क्यों खराब करेगी? रख दो, बेटे दूसरी बार खायेंगे।'

बुलाकी- 'तुम तो जरा-जरा सी बात पर तुनक जाते हो। सच कहा है, बुढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भोला ने इतना ही तो कहा था कि इतनी भीख मत ले जाओ, या और कुछ?'

सुजान- 'हां, बेचारा इतना कहकर रह गया। तुम्हें तो मजा तब आता, जब वह ऊपर से दो-चार डंडे लगा देता। क्यों? अगर यही अभिलाषा है, तो पूरी कर लो। भोला खा चुका होगा, बुला लाओ। नहीं, भोला को क्यों बुलाती हो, तुम्हीं जमा दो न, दो-चार हाथ। इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाये।'

बुलाकी- 'हां, और क्या, यही तो नारी का धरम है। अपने भाग सराहो कि मुझ जैसी सीधी औरत पा ली। जिस बल चाहते हो, बिठाते हो। ऐसी मुंहजोर होती, तो तुम्हारे घर में एक दिन भी निबाह न होता।'

सुजान - 'हां, भाई, यह तो मैं कह ही रहा हूं कि तुम देवी थीं और हो। मैं तब भी राक्षस था और अब भी दैत्य हूं। बेटे कमाऊ हैं, उनसे न कहोगी, तो क्या मुझ से कहोगी, मुझसे अब क्या लेना-देना है?'

बुलाकी- 'तुम झगड़ा करने पर तुले बैठे हो और मैं झगड़ा बचाती हूं कि चार आदमी हंसेगे। चलकर खाना खा लो सीधे से, नहीं तो मैं भी जाकर सो रहूंगी।'

सुजान- 'तुम भूखी क्यों सो रहोगी? तुम्हारे बेटों की तो कमाई है। हां, मैं बाहरी आदमी हूं।'

बुलाकी- 'बेटे तुम्हारे भी तो हैं?'

सुजान- 'नहीं, मैं ऐसे बेटों से बाज आया। किसी और के बेटे होंगे। मेरे बेटे होते, तो क्या मेरी दुर्गति होती?'

बुलाकी- 'गालियां दोगे तो मैं भी कुछ कह बैठूंगी। सुनती थी, मर्द बड़े समझदार होते हैं, पर तुम सबसे न्यारे हो। आदमी को चाहिए कि जैसा समय देखे, वैसा काम करे। अब हमारा और तुम्हारा निबाह इसी में है कि नाम के मालिक बने रहें और वही करें, जो लड़कों को अच्छा लगे। मैं यह बात समझ गयी, तुम क्यों नहीं समझ पाते? जो कमाता है, उसी का घर में राज होता है, यही दुनिया का दस्तूर है। मैं बिना लड़कों से पूछे कोई काम नहीं करती, तुम क्यों अपने मन की करते हो? इतने दिनों तक तो राज कर लिया, अब क्यों इस माया में पड़े हो? आधी रोटी खाओ, भगवान का भजन करो और पड़े रहो। चलो, खाना खा लो।'

सुजान- 'तो अब मैं द्वार का कुत्ता हूं?'

बुलाकी- 'बात जो थी, वह मैंने कह दी। अब अपने को जो चाहो समझो।' सुजान न उठे। बुलाकी हारकर चली गयी।

सुजान के सामने अब एक नयी समस्या खड़ी हो गई थी। वह बहुत दिनों से घर का स्वामी था और अब भी ऐसा ही समझता था। परिस्थिति में कितना उलट-फेर हो गया था, इसकी उसे खबर न थी। लड़के उसका सेवा-सम्मान करते हैं, यह बात उसे भ्रम में डाले हुए थी। लड़के उसके सामने चिलम नहीं पीते, खाट पर नहीं बैठते, क्या यह सब उसके गृह-स्वामी होने का प्रमाण न था? पर आज उसे यह ज्ञात हुआ कि यह केवल श्रद्धा थी, उसके स्वामित्व का प्रमाण नहीं। क्या इस श्रद्धा के बदले वह अपना अधिकार छोड़ सकता था? कदापि नहीं। अब तक जिस घर में राज्य किया, उसी घर में पराधीन बनकर नहीं रह सकता। उसको श्रद्धा की चाह नहीं, सेवा की भूख नहीं; उसे अधिकार चाहिए। वह इस घर पर दूसरों का अधिकार नहीं देख सकता। मंदिर का पुजारी बनकर वह नहीं रह सकता।

न जाने कितनी रात बाकी थी। सुजान ने उठकर गंड़ासे से बैलों का चारा काटना शुरू किया। सारा गांव सोता था, पर सुजान करवी काट रहे थे। इतना श्रम उन्होंने अपने जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने काम करना छोड़ा था, बराबर चारे के लिए हाय-हाय पड़ी रहती थी। शंकर भी काटता था, भोला भी काटता था, पर चारा पूरा न पड़ता था। आज वह इन लौंडों को दिखा देंगे, चारा कैसे काटना चाहिए। उनके सामने कटिया का पहाड़ खड़ा हो गया और टुकड़े कितने महीन तथा सुडौल थे, मानो सांचे में ढाले गए हों।

मुंह अंधेरे बुलाकी उठी तो कटिया देखकर बोली - 'भोला रात भर कटिया ही काटता रह गया? कितना कहा कि बेटा जी से जहान है, पर मानता ही नहीं। रात को सोया ही नहीं।'

सुजान भगत ने ताने से कहा- 'वह सोता ही कब है? जब देखता हूं, काम ही करता है। ऐसा कमाऊ संसार में कौन होगा?'

इतने में भोला आंखें मलता हुआ बाहर निकला। उसे भी यह ढेर देखकर आश्चर्य हुआ। मां से बोला - 'क्या शंकर आज बड़ी रात को उठा था, अम्मा?'

बुलाकी- 'वह तो पड़ा सो रहा है। मैंने तो समझा, तुमने काटी होगी।'

भोला- 'मैं तो सवेरे उठ ही नहीं पाता। दिन भर चाहे जितना काम कर लूं, पर रात को मुझसे नहीं उठा जाता।'

बुलाकी- 'तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है?'

भोला- 'हां, मालूम तो होता है। रात भर सोये नहीं। मुझसे कल बड़ी भूल हुई। अरे, वह तो हल लेकर जा रहे हैं। जान देने पर उतारू हो गये हैं क्या?'

बुलाकी- 'क्रोधी तो सदा के हैं। अब किसी की सुनेंगे थोड़े ही।'

भोला- 'शंकर को जगा दो, मैं भी जल्दी से मुंह-हाथ धोकर हल ले जाऊं।' जब और किसानों के साथ भोला हल लेकर खेत में पहुंचा, तो सुजान आधा खेत जोत चुके थे। भोला ने चुपके से काम करना शुरू किया। सुजान से कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी।

दोपहर हुआ। सभी किसानों ने हल छोड़ दिए। पर सुजान भगत अपने काम में मग्न है। भोला थक गया है, उसकी बार-बार इच्छा होती है कि बैलों को खोल दे, मगर डर के मारे कुछ कह नहीं सकता। उसको आश्चर्य हो रहा है कि दादा कैसे इतनी मेहनत कर रहे हैं।

आखिर डरते-डरते बोला - 'दादा, अब तो दोपहर हो गयी। हल खोल दें न?'

सुजान- 'हां खोल दो। तुम बैलों को लेकर चलो, मैं डांड़ फेंककर आता हूं।'

भोला- 'मैं संझा को डांड़ फेंक दूंगा।'

सुजान- 'तुम क्या फेंक दोगे। देखते नहीं हो, खेत कटोरे की तरह गहरा हो गया है, तभी तो बीच में पानी जम जाता है। इस गोइंड़ के खेत में बीस मन का बीघा होता था। तुम लोगों ने इसका सत्यानाश कर दिया।'

बैल खोल दिए गए। भोला बैलों को लेकर घर चला, पर सुजान डांड़ फेंकते रहे। आधा घंटे के बाद डांड़ फेंककर वह घर आये। मगर थकान का नाम न था। नहा-खाकर आराम करने के बदले उन्होंने बैलों को सहलाना शुरू किया। उनकी पीठ पर हाथ फेरा, उनके पैर मले, पूंछ सहलायी। बैलों की पूंछें खड़ी थीं। सुजान की गोद में सिर रखे उन्हें अकथनीय सुख मिल रहा था। बहुत दिनों के बाद आज उन्हें यह आनंद प्राप्त हुआ था। उनकी आंखों में कतज्ञता भरी हुई थी। मानों वे कह रहे थे, हम तुम्हारे साथ रात-दिन काम करने को तैयार हैं।

अन्य कृषकों की भांति भोला अभी कमर सीधी कर रहा था कि सुजान ने फिर हल उठाया और खेत की ओर चले। दोनों बैल उमंग से भरे दौड़े चले जाते थे, मानों उन्हें स्वयं खेत में पहुंचने की जल्दी थी।

भोला ने मड़ैया में लेटे-लेटे पिता को हल लिये जाते देखा, पर उठ न सका। उसकी हिम्मत छूट गयी थी। उसने कभी इतना परिश्रम न किया था। उसे बनी-बनायी गिरस्ती मिल गयी थी। उसे ज्यों-त्यों चला रहा था। इन दामों में वह घर का स्वामी बनने का इच्छुक न था। जवान आदमी को बीस धंधे होते हैं। हंसने-बोलने के लिए, गाने-बजाने के लिए भी तो उसे कुछ समय चाहिए।

पड़ोस के गांव में दंगल हो रहा है। जवान आदमी कैसे अपने को वहां जाने से रोकेगा? किसी गांव में बारात आयी है, नाच-गाना हो रहा है। जवान आदमी क्यों उसके आनंद से वंचित रह सकता है? वृद्धजनों के लिए ये बाधाएं नहीं। उन्हें न नाच-गाने से मतलब, न खेल-तमाशे से गरज, केवल अपने काम-से -काम है।

बुलाकी ने कहा - 'भोला, तुम्हारे दादा हल लेकर गये।'

भोला- 'जाने दो अम्मा, मुझसे यह नहीं हो सकता।'

* * *

सुजान भगत के इस नवीन उत्साह पर गांव में टीकाएं हुईं - निकल गयी सारी भगती। भगत बना हुआ था। माया में फंसा हुआ है। आदमी काहे को, भूत है।

मगर भगत जी के द्वार पर अब फिर साधु-संत आसन जमाए देखे जाते हैं। उनका आदर-सम्मान होता है। अबकी उनकी खेती ने सोना उगल दिया है। बखारी में अनाज रखने को जगह नहीं मिलती। जिस खेत में पांच मन मुश्किल से होता था, उसी खेत में अबकी दस मन की उपज हुई है।

चैत का महीना था। खलिहानों में सतयुग का राज था। जगह-जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे। यही समय है, जब कृषकों को भी थोड़ी देर के लिए अपना जीवन सफल मालूम होता है, जब गर्व से उनका हृदय उछलने लगता है। सुजान भगत टोकरों में अनाज भर-भरकर देते थे और दोनों लड़के टोकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे। कितने ही भाट और भिक्षुक भगत जी को घेरे हुए थे, उनमें वह भिक्षुक भी था; जो आज से आठ महीने पहले भगत के द्वार से निराश होकर लौट गया था।

सहसा भगत ने उस भिक्षुक से पूछा - 'क्यों बाबा, आज कहां-कहां चक्कर लगा आये?'

भिक्षुक- 'अभी तो कहीं नहीं गया भगत जी, पहले तुम्हारे ही पास आया हूं।'

भगत- 'अच्छा, तुम्हारे सामने यह ढेर है। इसमें से जितना अनाज उठाकर ले जा सको, ले जाओ।'

भिक्षुक ने लुब्ध नेत्रों से ढेर को देखकर कहा - 'जितना अपने हाथ से उठाकर दे दोगे, उतना ही लूंगा।'

भगत- 'नहीं, तुमसे जितना उठ सके, उठा लो।'

भिक्षुक के पास एक चादर थी। उसने कोई दस सेर अनाज उसमें भरा और उठाने लगा। संकोच के मारे और अधिक भरने का उसे साहस न हुआ।

भगत उसके मन का भाव समझकर आश्वासन देते हुए बोले- 'बस! इतना तो एक बच्चा भी उठा ले जायेगा।'

भिक्षुक ने भोला की ओर संदिग्ध नेत्रों से देखकर कहा - 'मेरे लिए इतना बहुत है।'

भगत- 'नहीं तुम सकुचाते हो। अभी और भरो।'

भिक्षुक ने एक पसेरी अनाज भरा, और फिर भोला की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा।

भगत- 'उसकी ओर क्या देखते हो, बाबा जी? मैं जो कहता हूं, वह करो। तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो।'

भिक्षुक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गठरी न उठाने दी, तो कितनी भद्द होगी। दूसरे भिक्षुकों को हंसने का अवसर मिल जायेगा। सब यही कहेंगे कि भिक्षुक कितना लोभी है। उसे और अनाज भरने की हिम्मत न पड़ी।

तब सुजान भगत ने चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बांध कर बोले- 'इसे उठा ले जाओ।'

भिक्षुक- 'बाबा, इतना तो मुझसे उठ न सकेगा।'

भगत- 'अरे! इतना भी न उठ सकेगा! बहुत होता तो मन भर। भला जोर तो लगाओ, देखूं, उठा सकते हो या नहीं।'

भिक्षुक ने गठरी को आजमाया। भारी थी। जगह से हिली भी नहीं। बोला- 'भगत जी, यह मुझसे न उठ सकेगी।'

भगत- 'अच्छा, बताओ किस गांव में रहते हो?'

भिक्षुक- 'बड़ी दूर है भगत जी, अमोला का नाम तो सुना होगा?

भगत- 'अच्छा, आगे-आगे चलो, मैं पहुंचा दूंगा।'

यह कहकर भगत ने जोर लगाकर गठरी उठायी और सिर पर रखकर भिक्षुक के पीछे हो लिए। देखने वाले भगत का यह पौरुष देखकर चकित हो गए। उन्हें क्या मालूम था कि भगत पर इस समय कौन-सा नशा था। आठ महीने के निरंतर अविरल परिश्रम का आज उन्हें फल मिला था। आज उन्होंने अपना खोया हुआ अधिकार फिर पाया था। वही तलवार, जो केले को भी नहीं काट सकती, सान पर चढ़कर लोहे को काट देती है। मानव-जीवन में लाग बड़े महत्त्व की वस्तु है। जिसमें लाग है, वह बूढ़ा भी हो तो जवान है। जिसमें लाग नहीं, गैरत नहीं, वह जवान भी मृतक है। सुजान भगत में लाग थी और उसी ने उन्हें अमानुषीय बल प्रदान कर दिया था। चलते समय उन्होंने भोला की ओर सगर्व नेत्रों से देखा और बोले - 'ये भाट और भिक्षुक खड़े हैं, कोई खाली हाथ न लौटने पाए।'

भोला सिर झुकाए खड़ा था, उसे कुछ बोलने का हौसला न हुआ। वृद्ध पिता ने उसे परास्त कर दिया था।

बालक

गंगू को लोग ब्राह्मण कहते हैं और वह अपने को ब्राह्मण समझता भी है। मेरे साईस और ख़िदमतगार मुझे दूर से सलाम करते हैं। गंगू मुझे कभी सलाम नहीं करता। वह शायद मुझसे पालागन की आशा रखता है। मेरा जूठा गिलास कभी हाथ से नहीं छूता और न मेरी कभी इतनी हिम्मत हुई कि उससे पंखा झलने को कहूं। जब मैं पसीने से तर होता हूं और वहां कोई दूसरा आदमी नहीं होता, तो गंगू आप-ही-आप पंखा उठा लेता है; लेकिन उसकी मुद्रा से यह भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि मुझ पर कोई एहसान कर रहा है और मैं भी न जाने क्यों फौरन ही उसके हाथ से पंखा छीन लेता हूं। उग्र स्वभाव का मनुष्य है। किसी की बात नहीं सह सकता। ऐसे बहुत कम आदमी होंगे, जिनसे उसकी मित्रता हो, पर साईस और खिदमतगार का साथ बैठना शायद वह अपमानजनक समझता है। मैंने उसे किसी से मिलते-जुलते नहीं देखा। आश्चर्य यह है कि उसे भंग-बूटी से प्रेम नहीं, जो इस श्रेणी के मनुष्यों में एक असाधारण गुण है। मैंने उसे कभी पूजा-पाठ करते या नदी में स्नान करते नहीं देखा। बिलकुल निरक्षर है, लेकिन फिर भी वह ब्राह्मण है और चाहता है कि दुनिया उसकी प्रतिष्ठा तथा सेवा करे और क्यों न चाहे... जब पुरुखों की पैदा की हुई सम्पत्ति पर आज भी लोग अधिकार जमाये हुए हैं और उसी शान से, मानो खुद पैदा किये हों, तो वह क्यों उस प्रतिष्ठा और सम्मान को त्याग दे, जो उसके पुरुखों ने संचय किया था। यह उसकी बपौती है।

मेरा स्वभाव कुछ इस तरह का है कि अपने नौकरों से बहुत कम बोलता हूं। मैं चाहता हूं, जब तक मैं खुद न बुलाऊ, कोई मेरे पास न आये। मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि ज़रा-सी बात के लिए नौकरों को आवाज देता फिरूं। मुझे अपने हाथ से सुराही से पानी उड़ेल लेना, अपना लैम्प जला लेना, अपने जूते पहन लेना या अलमारी से किताब निकाल लेना, इससे कहीं ज्यादा सरल मालूम होता है कि हींगन और मैकू को पुकारूं। इससे मुझे अपनी स्वेच्छा और आत्मविश्वास का बोध होता है। नौकर भी मेरे स्वभाव से परिचित हो गये हैं और बिना ज़रूरत मेरे पास बहुत कम आते हैं। इसलिए एक दिन जब प्रात:काल गंगू मेरे सामने आकर खड़ा हो गया तो मुझे बहुत बुरा लगा। ये लोग जब आते हैं, तो पेशगी हिसाब में कुछ मांगने के लिए या किसी दूसरे नौकर की शिकायत करने के लिए। मुझे ये दोनों ही बातें अत्यंत अप्रिय हैं। मैं पहली तारीख को हर एक का वेतन चुका देता हूं और बीच में जब कोई कुछ मांगता है, तो क्रोध आ जाता है, कौन दो-दो, चार-चार रुपये का हिसाब रखता फिरे। फिर जब किसी को महीने-भर की पूरी मजूरी मिल गयी, तो उसे क्या हक है कि उसे पन्द्रह दिन में खर्च कर दे और ऋण या पेशगी की शरण ले, और शिकायतों से तो मुझे घृणा है। मैं शिकायतों को दुर्बलता का प्रमाण समझता हूं या ठकुरसुहाती की क्षुद्र चेष्टा।

मैंने माथा सिकोड़कर कहा - 'क्या बात है, मैंने तो तुम्हें बुलाया नहीं?'

गंगू के तीखे अभिमानी मुख पर आज कुछ ऐसी नम्रता, कुछ ऐसी याचना, कुछ ऐसा संकोच था कि मैं चकित हो गया। ऐसा जान पड़ा, वह कुछ जवाब देना चाहता है; मगर शब्द नहीं मिल रहे हैं।

मैंने ज़रा नम्र होकर कहा - 'आखिर क्या बात है, कहते क्यों नहीं? तुम जानते हो, यह मेरे टहलने का समय है। मुझे देर हो रही है।'

गंगू ने निराशा भरे स्वर में कहा - 'तो आप हवा खाने जायें, मैं फिर आ जाऊंगा।'

यह अवस्था और भी चिन्ताजनक थी। इस जल्दी में तो वह एक क्षण में अपना वृतांत कह सुनायेगा। वह जानता है कि मुझे ज्यादा अवकाश नहीं है। दूसरे अवसर पर तो दुष्ट घण्टों रोयेगा। मेरे कुछ लिखने-पढ़ने को तो वह शायद कुछ काम समझता हो; लेकिन विचार को, जो मेरे लिए सबसे कठिन साधना है, वह मेरे विश्राम का समय समझता है। वह उसी वक्त आकर मेरे सिर पर सवार हो जायेगा।

मैंने निर्दयता के साथ कहा- 'क्या कुछ पेशगी मांगने आये हो? मैं पेशगी नहीं देता।'

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी पेशगी नहीं मांगा।'

'तो क्या किसी की शिकायत करना चाहते हो? मुझे शिकायतों से घृणा है।'

'जी नहीं सरकार, मैंने तो कभी किसी की शिकायत नहीं की।'

गंगू ने अपना दिल मजबूत किया। उसकी आकृति से स्पष्ट झलक रहा था, मानो वह कोई छलांग मारने के लिए अपनी सारी शक्तियों को एकत्र कर रहा हो। वह लड़खड़ाती हुई आवाज में बोला - 'मुझे आप छुट्टी दे दें। मैं आपकी नौकरी अब न कर सकूंगा।'

यह इस तरह का पहला प्रस्ताव था, जो मेरे कानों में पड़ा। मेरे आत्माभिमान को चोट लगी। मैं जब अपने को मनुष्यता का पुतला समझता हूं, अपने नौकरों को कभी कटुवचन नहीं कहता, अपने स्वामित्व को यथासाध्य म्यान में रखने की चेष्टा करता हूं, तब मैं इस प्रस्ताव पर क्यों न विस्मित हो जाता! कठोर स्वर में बोला- 'क्यों, क्या शिकायत है?'

'आपने तो हुजूर, जैसा अच्छा स्वभाव पाया है, वैसा क्या कोई पायेगा; लेकिन बात ऐसी आ पड़ी है कि अब मैं आपके यहां नहीं रह सकता। ऐसा न हो कि पीछे से कोई बात हो जाये, तो आपकी बदनामी हो। मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से आपकी आबरू में बट्टा लगे।'

मेरे दिल में उलझन पैदा हुई। जिज्ञासा की अग्नि प्रचण्ड हो गयी। आत्मसमर्पण के भाव से बरामदे में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठकर बोला- 'तुम तो पहेलियां बुझवा रहे हो। साफ-साफ क्यों नहीं कहते, क्या मामला है?'

गंगू ने बड़ी नम्रता से कहा - 'बात यह है कि वह स्त्री, जो अभी विधवा-आश्रम से निकाल दी गयी है, वही गोमती देवी....।'

वह चुप हो गया। मैंने अधीर होकर कहा- 'हां, निकाल दी गयी है, तो फिर? तुम्हारी नौकरी

से उसका क्या सम्बन्ध ?'

गंगू ने जैसे अपने सिर का भारी बोझ जमीन पर पटक दिया -

'मैं उससे ब्याह करना चाहता हूं बाबूजी!'

मैं विस्मय से उसका मुंह ताकने लगा। यह पुराने विचारों का पोंगा ब्राह्मण जिसे नयी सभ्यता की हवा तक न लगी, उस कुलटा से विवाह करने जा रहा है, जिसे कोई भला आदमी अपने घर में कदम भी न रखने देगा। गोमती ने मुहल्ले के शांत वातावरण में थोड़ी-सी हलचल पैदा कर दी। कई साल पहले वह विधवाश्रम में आयी थी। तीन बार आश्रम के कर्मचारियों ने उसका विवाह कर दिया था, पर हर बार वह महीने-पन्द्रह दिन के बाद भाग आयी थी। यहां तक कि आश्रम के मंत्री ने अबकी बार उसे आश्रम से निकाल दिया था। तब से वह इसी मुहल्ले में एक कोठरी लेकर रहती थी और सारे मुहल्ले के शोहदों के लिए मनोरंजन का केन्द्र बनी हुई थी।

मुझे गंगू की सरलता पर क्रोध भी आया और दया भी। इस गधे को सारी दुनिया में कोई स्त्री ही न मिलती थी, जो इससे ब्याह करने जा रहा है, जब वह तीन बार पतियों के पास से भाग आयी, तो इसके पास कितने दिन रहेगी? कोई गांठ का पूरा आदमी होता, तो एक बात भी थी। शायद साल-छः महीने टिक जाती। यह तो निपट आंख का अंधा है। एक सप्ताह भी तो निबाह न होगा।

मैंने चेतावनी के भाव से पूछा- 'तुम्हें इस स्त्री की जीवन-कथा मालूम है?'

गंगू ने आंखों- देखी बात की तरह कहा- 'सब झूठ है सरकार, लोगों ने नाहक उसको बदनाम कर दिया है।'

'क्या कहते हो, वह तीन बार अपने पतियों के पास से नहीं भाग आयी?'

'उन लोगों ने उसे निकाल दिया, तो क्या करती?'

'कैसे बुद्धू आदमी हो! कोई इतनी दूर से आकर विवाह करके ले जाता है, हजारों रुपये खर्च करता है, इसलिए कि औरत को निकाल दे?'

गंगू ने भावुकता से कहा - 'जहां प्रेम नहीं है हुजूर, वहां कोई स्त्री नहीं रह सकती। स्त्री केवल रोटी कपड़ा ही नहीं चाहती, कुछ प्रेम भी तो चाहती है। वे लोग समझते होंगे कि हमने एक विधवा से विवाह करके उसके ऊपर कोई बहुत बड़ा एहसान किया है। चाहते होंगे कि तन-मन से वह उनकी हो जाये, लेकिन दूसरे को अपना बनाने के लिए पहले आपको उसका बन जाना पड़ता है हुजूर! यह बात है। फिर उसे एक बीमारी भी है। उसे कोई भूत लगा हुआ है, कभी-कभी बकझक करने लगती है और बेहोश जाती है।'

'और तुम ऐसी स्त्री से विवाह करोगे?'- मैंने संदिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा- 'समझ लो, जीवन कड़वा हो जायेगा।'

गंगू ने शहीदों के-से आवेश से कहा - 'मैं तो समझता हूं, मेरी जिंदगी बन जायेगी बाबूजी, आगे भगवान की मर्जी!'

मैंने जोर देकर पूछा- 'तो तुमने तय कर लिया है?'

'हां हुजूर!'

'तो मैं तुम्हारा इस्तीफा मंजूर करता हूं।'

मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बंधनों का दास नहीं हूं; लेकिन जो आदमी एक दुष्टा से विवाह करे, उसे अपने यहां रखना वास्तव में जटिल समस्या थी। आये-दिन टण्टे-बखेड़े होंगे, नयी-नयी उलझनें पैदा होंगी, कभी पुलिस दौड़ लेकर आयेगी, कभी मुकदमे खड़े होंगे। संभव है, चोरी की वारदातें भी हों। इस दलदल से दूर रहना ही अच्छा। गंगू क्षुधा-पीड़ित प्राणी की भांति रोटी का टुकड़ा देखकर उसकी ओर लपक रहा है। रोटी जूठी है, सूखी हुई है, खाने योग्य नहीं है, इसकी उसे परवाह नहीं; उसको विचार-बुद्धि से काम लेना कठिन था। मैंने उसे पृथक कर देने ही में अपनी कुशल समझी।

* * *

पांच महीने गुजर गये। गंगू ने गोमती से विवाह कर लिया था और उसी मुहल्ले में एक खपरैल का मकान लेकर रहता था। वह अब चाट का खोंचा लगाकर गुजर-बसर करता था। मुझे जब कभी बाजार में मिल जाता, तो मैं उसका कुशल-क्षेम पूछता। मुझे उसके जीवन से विशेष अनुराग हो गया था। यह एक सामाजिक प्रश्न की परीक्षा थी, सामाजिक ही नहीं, मनोवैज्ञानिक भी। मैं देखना चाहता था, इसका परिणाम क्या होता है। मैं गंगू को सदैव प्रसन्न-मुख देखता। समृद्धि और निश्चिन्तता के मुख पर जो एक तेज और स्वभाव में जो एक आत्म-सम्मान पैदा हो जाता है, वह मुझे यहां प्रत्यक्ष दिखायी देता था। रुपये-बीस आने की रोज बिक्री हो जाती थी। इसमें लागत निकालकर आठ-दस आने बच जाते थे। यही उसकी जीविका थी। किन्तु इसमें किसी देवता का वरदान था; क्योंकि इस वर्ग के मनुष्यों में जो निर्लज्जता और विपन्नता पायी जाती है, इसका वहां चिह्न तक न था। उसके मुख पर आत्म-विकास और आनन्द की झलक थी, जो चित्त की शान्ति से ही आ सकती है।

* * *

एक दिन मैंने सुना कि गोमती गंगू के घर से भाग गयी है। कह नहीं सकता, क्यों? मुझे इस खबर से एक विचित्र आनन्द हुआ। मुझे गंगू के संतुष्ट और सुखी जीवन से एक प्रकार की ईर्ष्या होती थी। मैं उसके विषय में किसी अनिष्ट की, किसी घातक अनर्थ की, किसी लज्जास्पद घटना की प्रतीक्षा करता था। इस खबर से ईर्ष्या को सांत्वना मिली। आखिर वही बात हुई, जिसका मुझे विश्वास था। आखिर गंगू को अपनी अदूरदर्शिता का दण्ड भोगना पड़ा। अब देखें, गंगू कैसे मुंह दिखाता है, अब आंखें खुलेंगी और मालूम होगा कि लोग, जो उन्हें इस विवाह से रोक रहे थे, उनके कैसे शुभचिंतक थे। उस वक्त तो ऐसा मालूम होता था, मानो आपको कोई दुर्लभ पदार्थ मिला जा रहा हो। मानो मुक्ति का द्वार खुल गया है। लोगों ने कितना कहा कि यह स्त्री विश्वास

के योग्य नहीं है, कितनों को दगा दे चुकी है, तुम्हारे साथ भी दगा करेगी; लेकिन इसके कानों पर जूं तक न रेंगी। अब मिलें, तो जरा उनका मिज़ाज पूछूं। कहूं, क्यों महाराज, देवीजी का यह वरदान पाकर प्रसन्न हुए या नहीं? तुम तो कहते थे, वह ऐसी है और वैसी है, लोग उस पर केवल दुर्भावना के कारण दोष आरोपित करते हैं। अब बतलाओ, किसकी भूल थी?

उसी दिन संयोगवश गंगू से बाजार में भेंट हो गयी। घबराया हुआ था, बदहवास था, बिलकुल खोया हुआ। मुझे देखते ही उसकी आंखों में आंसू भर आये, लज्जा से नहीं, व्यथा से। मेरे पास आकर बोला- 'बाबूजी, गोमती ने मेरे साथ विश्वासघात किया।' मैंने कुटिल आनन्द से, लेकिन कृत्रिम सहानुभूति दिखाकर कहा– 'तुमसे तो मैंने पहले ही कहा था; लेकिन तुम माने ही नहीं, अब सब्र करो। इसके सिवा और क्या उपाय है। रुपये-पैसे ले गयी या कुछ छोड़ गयी?'

गंगू ने छाती पर हाथ रखा। ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे इस प्रश्न ने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया।

'अरे बाबूजी! ऐसा न कहिए, उसने धेले की भी चीज नहीं छुई। अपना जो कुछ था, वह भी छोड़ गयी। न-जाने मुझमें क्या बुराई देखी। मैं उसके योग्य न था और क्या कहूं। वह पढ़ी-लिखी थी, मैं करिया अक्षर भैंस बराबर। मेरे साथ इतने दिन रही, यही बहुत था। कुछ दिन और उसके साथ रह जाता, तो आदमी बन जाता। उसका आपसे कहां तक बखान करूं हुजूर। औरों के लिए चाहे जो कुछ रही हो, मेरे लिए तो किसी देवता का आशीर्वाद थी। न-जाने मुझसे क्या ऐसी खता हो गयी। मगर कसम ले लीजिए, जो उसके मुख पर मैल तक आया हो। मेरी औकात ही क्या है बाबूजी ! दस-बारह आने का मजूर हूं; पर इसी में उसके हाथों इतनी बरकत थी कि कभी कमी नहीं पड़ी।'

मुझे इन शब्दों से घोर निराशा हुई। मैंने समझा था, वह उसकी बेवफाई की कथा कहेगा और मैं उसकी अंध-भक्ति पर कुछ सहानुभूति प्रकट करूंगा; मगर उस मूर्ख की आंखें अब तक नहीं खुलीं। अब भी उसी का मंत्र पढ़ रहा है। अवश्य ही इसका चित्त कुछ अव्यवस्थित है।

मैंने कुटिल परिहास आरम्भ किया- 'तो तुम्हारे घर से कुछ नहीं ले गयी?

'कुछ भी नहीं बाबूजी, धेले की भी चीज नहीं।'

'और तुमसे प्रेम भी बहुत करती थी?'

'अब आपसे क्या कहूं बाबूजी, वह प्रेम तो मरते दम तक याद रहेगा।'

'फिर भी तुम्हें छोड़कर चली गयी?'

'यही तो आश्चर्य है बाबूजी!'

'त्रिया-चरित्र का नाम कभी सुना है?'

'अरे बाबूजी। ऐसा न कहिए। मेरी गर्दन पर कोई छुरी रख दे, तो भी मैं उसका यश ही गाऊंगा।'

'तो फिर ढूँढ निकालो!'

'हां, मालिक। जब तक उसे ढूंढ़ न लाऊंगा, मुझे चैन न आयेगा। मुझे इतना मालूम हो जाये कि वह कहां है, फिर तो मैं उसे ले ही आऊंगा; और बाबूजी, मेरा दिल कहता है कि वह आयेगी जरूर। देख लीजिएगा। वह मुझसे रूठकर नहीं गयी; लेकिन दिल नहीं मानता। जाता हूं, महीने-दो-महीने जंगल, पहाड़ की धूल छानूंगा। जीता रहा, तो फिर आपके दर्शन करूंगा।'

यह कहकर वह उन्माद की दशा में एक तरफ चल दिया।

* * *

इसके बाद मुझे एक जरूरत से नैनीताल जाना पड़ा। सैर करने के लिए नहीं। एक महीने के बाद लौटा और अभी कपड़े भी न उतारने पाया था कि देखता हूं, गंगू एक नवजात शिशु को गोद में लिये खड़ा है। शायद कृष्ण को पाकर नंद भी इतने पुलकित न हुए होंगे। मालूम होता था, उसके रोम-रोम से आनंद फूटा पड़ता है। चेहरे और आंखों से कृतज्ञता और श्रद्धा के राग-से निकल रहे थे। कुछ वही भाव था, जो किसी क्षुधा-पीड़ित भिक्षुक के चेहरे पर भरपेट भोजन करने के बाद नज़र आता है।

मैंने पूछा- 'कहो महाराज, गोमती देवी का कुछ पता लगा, तुम तो बाहर गये थे?'

गंगू ने आपे में न समाते हुए जवाब दिया- 'हां बाबूजी, आपके आशीर्वाद से ढूंढ़ लाया। लखनऊ के जनाने अस्पताल में मिली। यहां एक सहेली से कह गयी थी कि अगर वह बहुत घबराये तो बतला देना। मैं सुनते ही लखनऊ भागा और उसे घसीट लाया। घाते में यह बच्चा भी मिल गया।' उसने बच्चे को उठाकर मेरी तरफ बढ़ाया। मानो कोई खिलाड़ी तमगा पाकर दिखा रहा हो।

मैंने उपहास के भाव से पूछा- 'अच्छा, यह लड़का भी मिल गया? शायद इसलिए वह यहां से भागी थी। है तो तुम्हारा ही लड़का?'

'मेरा काहे को है बाबूजी, आपका है, भगवान का है।'

'तो लखनऊ में पैदा हुआ?'

'हां बाबूजी, अभी तो कुल एक महीने का है।'

'तुम्हारे ब्याह हुए कितने दिन हुए?'

'यह सातवां महीना जा रहा है।'

'तो शादी के छठे महीने पैदा हुआ?'

'और क्या बाबूजी।'

'फिर भी तुम्हारा लड़का है?'

'हां, जी।'

'कैसी बे-सिर-पैर की बात कर रहे हो?'

मालूम नहीं, वह मेरा आशय समझ रहा था या बन रहा था। उसी निष्कपट भाव से बोला– 'मरते-मरते बची बाबूजी, नया जनम हुआ। तीन दिन, तीन रात छटपटाती रही। कुछ न पूछिए।' मैंने अब जरा व्यंग्य-भाव से कहा– 'लेकिन छह महीने में लड़का होते आज ही सुना।' यह चोट निशाने पर जा बैठी।

मुस्कराकर बोला- 'अच्छा, वह बात! मुझे तो उसका ध्यान भी नहीं आया। इसी भय से तो गोमती भागी थी। मैंने कहा- 'गोमती, अगर तुम्हारा मन मुझसे नहीं मिलता, तो तुम मुझे छोड़ दो। मैं अभी चला जाऊंगा और फिर कभी तुम्हारे पास न आऊंगा। तुमको जब कुछ काम पड़े तो मुझे लिखना, मैं भरसक तुम्हारी मदद करूंगा। मुझे तुमसे कुछ मलाल नहीं है। मेरी आंखों में तुम अब भी उतनी ही भली हो। अब भी मैं तुम्हें उतना ही चाहता हूं। नहीं, अब मैं तुम्हें और ज्यादा चाहता हूं; लेकिन अगर तुम्हारा मन मुझसे फिर नहीं गया है, तो मेरे साथ चलो। गंगू जीते-जी तुमसे बेवफाई नहीं करेगा। मैंने तुमसे इसलिए विवाह नहीं किया कि तुम देवी हो; बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हें चाहता था और सोचता था कि तुम भी मुझे चाहती हो। यह बच्चा मेरा बच्चा है। मेरा अपना बच्चा है। मैंने एक बोया हुआ खेत लिया, तो क्या उसकी फसल को इसलिए छोड़ दूंगा कि उसे किसी दूसरे ने बोया था?' यह कहकर उसने जोर से ठठ्ठा मारा।

मैं कपड़े उतारना भूल गया। कह नहीं सकता, क्यों मेरी आंखें सजल हो गयीं। न जाने वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने मेरी मनोगत घृणा को दबाकर मेरे हाथों को बढ़ा दिया। मैंने उस निष्कलंक बालक को गोद में ले लिया और इतने प्यार से उसका चुंबन लिया कि शायद अपने बच्चों का भी न लिया होगा।

गंगू बोला- 'बाबूजी, आप बड़े सज्जन हैं। मैं गोमती से बार-बार आपका बखान किया करता हूं। कहता हूं, चल, एक बार उनके दर्शन कर आ; लेकिन मारे लाज के आती ही नहीं।'

मैं और सज्जन! अपनी सज्जनता का पर्दा आज मेरी आंखों से हटा। मैंने भक्ति से डूबे हुए स्वर में कहा- 'नहीं जी, मेरे जैसे कलुषित मनुष्य के पास वह क्या आयेगी। चलो, मैं उनके दर्शन करने चलता हूं। तुम मुझे सज्जन समझते हो? मैं ऊपर से सज्जन हूं; पर दिल का कमीना हूं। असली सज्जनता तुममें है और यह बालक वह फूल है, जिससे तुम्हारी सज्जनता की महक निकल रही है।' मैं बच्चे को छाती से लगाये हुए गंगू के साथ चला।

* * *